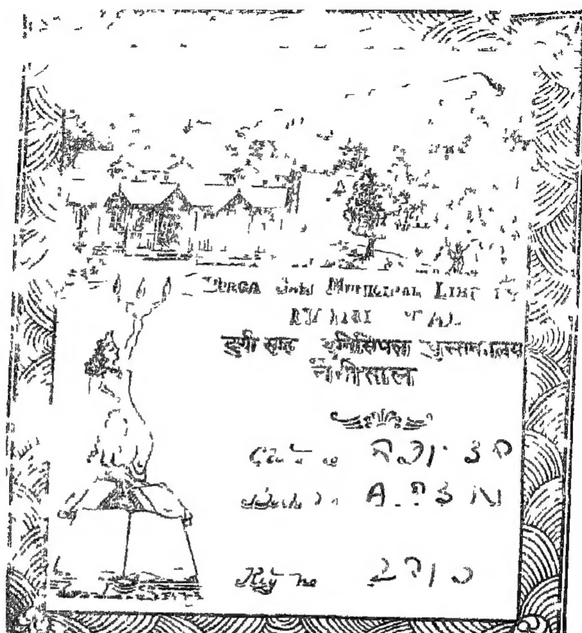
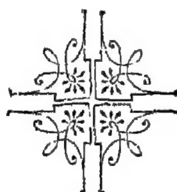

दुर्गा साह म्युनिसिपल पुस्तकालय
नैनीताल

नई कहानियाँ

(मौलिक संकलन)

सम्पादक —

अशान्त त्रिपाठी बी० ए०



कमल साहित्य मंदिर,

झाँसी ।

प्रकाशक :-

[illegible]

मूल्य १॥)

मुद्रक :-

सैण्ट जोसेफ्स प्रेस,

झाँसी.

मानवता के पुजारी विश्ववंद्य बापू

को

सादर समर्पित ।

—सम्पादक

अनुक्रमः—





भूमिका

"नई कहानियाँ" प्रगतिशील कहानियों का एक संग्रह है जिसमें हिन्दी के उच्च कोटि के लेखकों की कलाओं का निरूपण है, भावी युग के निर्माण करने की शक्ति है तथा मानव की आधुनिक समस्याओं का समन्वय है।

कहानी साहित्य युग का स्तम्भ चिरकाल से रहा है और रहेगा पर साथ ही साथ इसका उत्तरदायित्व युग के उन उदीयमान कलाकारों पर भी है जोकि युग की संघर्षमयी परिस्थितियों का सामना करते हुये हिन्दी साहित्य की तीव्र प्रवाहित धारा में अपने दो कण मिला रहे हैं। कहानी जीवन का वास्तविक अभिनय है, उसमें से जीवन की अंतरात्मा बोलती है पर यह तब ही होता है जब कहानी वास्तविकता का स्वरूप ग्रहण कर लेती है।

कहानी घटना है और मानव जीवन में होनेवाली रोमांचकारी घटनाओं को उसी रूप में प्रत्यक्ष रूप से रखती है, जो कुछ वास्तविक में होता है। वैसे कहानी का क्षेत्र बहुत विस्तृत है और विदेशी साहित्य में तो कहानी ने मानव जीवन में अपना विशेष स्थान प्राप्त करलिया है पर आधुनिक युग की प्रवाहित विचारधारा में कहानी ने विश्लेषण का वह चमत्कार दिखलाया है कि प्रत्येक अंग में अब कहानी का सहारा लेना पड़ता है।

जीवन एक कहानी है। जीवन में जितनी समस्यायें अवगत होती हैं वे सब एक २ कर के कहानी के स्वरूप में परिवर्त्तित होती रहती हैं। आज के युग में तो कहानियाँ जीवन के महत्व पूर्ण अंग हैं क्यों कि उनमें जीवन का वास्तविक विश्लेषण होता है। इतना होते हुये भी आज के युग में ऐसे प्रतिनिधि कहानी संग्रह की आवश्यकता है जो मानव जीवन की सभी महत्वपूर्ण परिस्थितियों का प्रतिनिधित्व कर सके जिससे कि देश की निर्जीव जनता में स्फूर्त्ति की भावना जाग्रत हो सके, उनकी गहरी नींद में चेतना आसके और उनकी निराशा में आशा का आभास झलक सके।

इसी दृष्टिकोण को अपने समक्ष रहकर हमने भी एक आन्दोलन खड़ा किया है जिसमें चेतना है, स्फूर्त्ति है और उत्साह है। नवीन लेखकों को आह्वान है कि वे उठें और अब अपनी कलम का समुचित लाभ उठायें '। प्रायः पूँजीवर्ग का साहित्यिक लेखक का शोषण करता है और अपना स्वार्थ सिद्ध कर देश के साहित्य को अवनति के गर्त में फेंक देता है। इस कारण हमने इस संग्रह को प्रकाशित कर उस वर्ग को चेतावनी दी है कि अब उनका कार्य क्षणिक रहेगा।

इस प्रतिनिधि संग्रह में प्रगतिशील लेखकों की ११ कहानियाँ हैं जिसमें आधुनिक युग की सभी राजनैतिक व साम्प्रदायिक घटनाओं का समन्वय है जिसके कारण आज देश की सभी परिस्थितियाँ परिवर्त्तित होगई हैं। कहानियों में उन बेगुनाहों का पुकार है जिन्होंने देश के हेतु अपना सर्वस्व बलिदान करदिया है। "मानवता सर्वदा जीवित रहेगी। वह कुछ दिन के लिये दानवता का स्वरूप ग्रहण कर सकती है पर अन्त में मानवता ही

स्थायी रहेगी, उसका ही अस्तित्व रहेगा" इस सिद्धान्त का समन्वय प्राय: अधिकांश कहानियों में मिलेगा।

अन्त में वे कलाकार धन्यवाद के पात्र हैं जिन्होंने हमें इस बड़े कार्य में अपना सहयोग प्रदान किया है।

झाँसी।
१-११-४८.

अशान्त त्रिपाठी,
बी० ए०

एक था गांधी

अमृतलाल नागर

एक था गांधी, एक थी दुनिया। गांधी एक रंग का दुनिया रंगबिरंगी।

दुनिया कहती, देखो मैं कैसी रंगबिरंगी हूँ। पलमें साज बाज बदल जाते हैं मेरा रंग रूप बदल जाता है। इससे मैं बड़ी सुन्दर लगती हूँ।

दुनिया को अपनी इस रंगा रंगवाली सुन्दरता पर बड़ा घमंड था। वह सब को रिझा लेती थी। पर गांधी न रीझा।

गांधी ने दुनिया से कहा कि तुम बड़ी रंग बिरंगी, हमें अच्छी नहीं लगतीं।

इसपर दुनिया जल भुन कर कलावत्तू हो गयी, और जल्दी जल्दी रंग बदलने लगी।

मगर गांधी ने उस ओर देखा ही नहीं। वह सूरज को देख रहा था। गांधी ने देखा पूरब का सूरज पच्छिम में डूबता है।

गांधी पच्छिम गया। दुनिया ने वहां भी उसका पीछा न छोड़ा, लगी अपने रंग दिखाने। काले गोरे का भेद नजर आया। गोरा रंग कहे "मैं काले से अच्छा हूँ" काले का दरजा मुझ से नीचा है। मैं काले पर राज करूंगा। तरह तरह के जोर जुलुम और अत्याचार करूंगा।

गोरा कहे मेरा सुख तो मेरा है ही, पर मैं काले के सुखपर भी अपना हक जमाऊंगा। काले को क्या हक कि सुख भोगे। काला कहे मैं अपना सुख क्यों न भोगूं? गोरा डपट कर जवाब दे, क्यों कि तुम काले हो।

गांधी ने न्याय की बात कही। कहा, कि सब रंग एक समान। काया के पिंजरे चाहे जितने रंगों के हों पर मन का पंछी तो सब में एक ही जैसा है। फिर ऊंच नीच कैसा, छोटा बड़ा कैसा, राजा परजा कैसी।

गोरा बिगड़ गया। उसने अपने जोम में मारते मारते गांधी की हड्डी पसली तोड़ दी।

गांधी बोला, गोरे यह तुम्हारा अन्याय है। मैं तो न्याय की बात कहूँगा।

गोरा बोला, तुम न्याय की कहोगे तो हम और मारेंगे।

गांधी से न्याय की बात सुनकर काले को समझ आई। काले ने सोचा ठीक तो है। गोरा मुझपर क्यों राज करे? क्यों लूटे? काला सोचे मैं गोरे से बेकार डरता था। डर ही डर में कमजोर

बन गया। अब न डरूंगा। और जो गोरा अब न्याय की बात को मारकर दबायेगा तो मैं भी मारूंगा।

गांधी ने कहा, यह बात जँची नहीं। गोरा भी अन्याय करे, और फिर काला भी अन्याय करे। अन्याय से अन्याय खतम कैसे होगा ? गोरे को गोरा रंग मेट नहीं सकता, और न काले को काला। सच्ची बात तो यह है कि गोरे काले एक दूसरे को नहीं मेट सकते। हां, अन्याय को न्याय से मटियामेट किया जा सकता है। गोरा मेरे ऊपर चाहे जितनी जबरदस्ती दिखाले, चाहे कोई मेरे ऊपर जितना जोर जुलम करले—मैं डरूंगा ही नहीं। क्यों डरूं ज्यादा से ज्यादा मुझे मार ही डालेगा न ? सो मरना तो एक दिन सबको ही है। जब मरना है तो डरना क्या ? फिर न्याय की बात में क्यों दबे।

बात काले की समझ में आ गयी।

दुनिया अपने रंगों का खिलवाड़ देख रही थी। वह काले को भी शह देने लगी और गोरे को भी। गोरा रंग तो मुँह जोर, झट से दुनिया की चंग पर चढ़ गया। पर काला तो डर ही डर में कमजोर हो गया। दुनिया की बताई चालपर डग उठाने का हौसला कहां से लाये। लेकिन न्याय अन्याय समझ जानेपर काला अब गोरे से दबकर भी रहना नहीं चाहता था।

गांधी की बात माने बिना रहा भी न जाता था। यों काला न्याय अन्याय के बड़े धरम संकट में पड़ गया। लड्डू खायें तो पछतायें। न खायें तो पछतायें। काले ने सोचा कि खायेंगे भी और पछतायेंगे भी—और फिर पछता पछता कर खायेंगे।

जो नियत डगमगायी तो चालाकी सूझी। काले ने सोचा कि हम अन्याय को न्याय से ही मारेंगे, मगर न्याय को भी हम न्याय की तरह नहीं मानेंगे—उसे नीति कहकर मानेंगे।

गांधी बोला, भाई तुम्हारी बात तो सवा सोलह आने की नहीं। खैर न्याय को नीति ही कहकर मानों, मगर नीति भी तो ईमानदारी पर ही चलती है। जिस नीति का ईमान नहीं वह बेईमान हुई और बेईमानी तो अन्याय है। काले को यह बात भी समझ में आ गई। समझ पर समझ आ रही थी। गोरे का डर भाग गया था। काले ने छाती ठोंक कर कहा, मेरा ईमान देखना।

फिर तो काला भी निडर होके खड़ा हो गया। गोरे से बोला, अब हम तुम से नहीं डरते। अब हम किसी से भी नहीं डरते, क्यों कि हम अब मरने से भी नहीं डरते। फिर तुम्हारे अत्याचारों से क्या डरना। तुम चाहे हमें फांसी पर चढ़ा दो मगर अब हम अपने हक़ तुम्हें न छीनने देंगे। हम किसी को भी न तो अपने साथ अन्याय करने देंगे और न खुद किसी के साथ अन्याय करेंगे।

गांधी ने कहा, कि हम तुम्हारे अन्याय को अपने न्याय से मारेंगे। और न्याय अन्याय तो समझ का फेर है। जिसके साथ अन्याय किया जाता है उसे न्याय की बात जल्दी समझ में आ जाती है। अन्यायी में न्याय विलम्ब से चेतेगा, मगर चेतेगा जरूर। सो अपने हक के लिए हम गोरे से लड़ेंगे तो जरूर, मगर गोरे को अपना दुश्मन नहीं मानेंगे। उसकी दुश्मन तो खुद उसकी समझ ही है, जिसके कारण वह न्याय अन्याय के भेद को नहीं

देख जाता। कोई और उसका हक छीने तो उसकी समझ में आये।

इसके बाद गांधी बोला, पर इससे रोग अच्छा कैसे हो सकता है? किसी को भी हो, जब तक छीने जानेका चलन रहेगा, तब तक किसी को भी चैन नहीं मिल सकता।

गांधी की बात लेकर काला गोरे से लड़ने लगा। गोरे ने काले की बड़ी मारकाट मचायी। काला बोला कि अजी, हम तुम्हारी इस मारकाट से डरेंगे ही नहीं। फिर तुम हमारा क्या बिगाड़ लोगे? मगर हम अपना हक तुम्हें न छीनने देंगे। हमारे ऊपर हमारा ही राज होगा। अब हम किसी के गुलाम नहीं रहेंगे।

दुनिया के बहुत से रंग खुलने लगे। सभी न्याय अन्याय की बात समझने लगे। सबकी समझ ने न्याय की बड़ी बड़ी पैनी बातें सोच निकालीं। सोचा कि बात काले गोरे तक ही नहीं रुक जाती—पीला रंग सबसे बड़ा है। चाहे गोरा हो या काला, सोने की बसंती चमक में सब की आँखें चौंधिया जाती हैं।

सबके ऊपर राज करता है सोना, सिक्का—पैसा। सोने की छत्र छाया में गोरी चिट्टी चांदी का रुपया काले बाजार से सांठ-गांठ करता है। सोने की छत्र छाया में एक घी का कौर खाता है, दूसरा जूते और लाठियां। सोने की छत्र छाया में ही दुनिया अपने रंग बदलती है—काले को गोरा गोरे को काला, सच को झूठ और झूठ को सच, पाप को पुन्न, और पुन्न को पाप कहकर दुनिया अपनी मनमानी कर लेती है।

यों अपनी पोल खुलती देखकर दुनिया घबरायी, मारे गुस्से के बोखला उठी। दो दो बार उसने बड़े धूम धड़ाके से अपने गुस्से की आग भड़कायी, मगर उसके सारे रंग ढंग बिगड़ते ही चले गये। अपनी यह दुर्गति देखकर दुनिया बेबसी और तेहे के मारे एक दम से लाल पीली हो गयी।

लाल रंग बोला, चाहे सब रंग मिट जायें पर हम न मिटेंगे। हमारा रंग तो प्रेम का रंग है। 'लाली मेरे लाल की जित देखूं तित लाल'। पर हम न्याय से अन्याय को मिटाने की तुम्हारी बात पर विश्वास नहीं करते। जब अन्याय न्याय के आगे अपना सिर झुकाने से इनकार करे, हठधर्मी दिखाये तब हम भी अपनी हठधर्मी से उसको हलाल करेंगे। लोहे को लोहा काटता है और हीरे को हीरा। एक बार अन्याय को अन्याय से खतम करलें, नफरत को नफरत से मिटा दें तब प्रेम ही प्रेम बच जायगा।

गांधी बोला यहां भी समझ का फेर है। हम प्रेम पर भरोसा रखकर हौसले से आगे बढ़ते हैं। तुम प्रेम पाने के लिए नफरत पर भरोसा रख कर आगे बढ़ते हो। हमारा हौसला तो सदा प्रेम भरा है—थकना जानता ही नहीं। तुम्हारा हौसला थक थक कर जागता है। सच्ची बात क्या है? वह हौसला, जो बिना चिढ़े, बिना रुके आगे बढ़ता जाये, या कि जो चिढ़ता और चिढ़ाता हुआ आगे बढ़े।

पीला अपनी चालें चलने लगा।

वह बोला कि आह, प्रेम और वसंत का तो संजोग है। हम पीले तो जग पीला। हम प्रेम ही प्रेम करेंगे। हम अपने से प्रेम

करेंगे। जब अपने से ही प्रेम न सधा तो दुनिया से क्या सधेगा? इसलिए सिर्फ हम अपने से ही प्रेम करेंगे।

गाँधी बोला, जो एक से ही प्रेम का पाठ पढ़ना है तो सूरज से प्रेम करो, जिस में सब रंग समाये हैं।

पीले ने आँख उठाकर आसमान की तरफ देखा। सूरज जब उससे न सहा गया तो झट से आँखें नीची करलीं और कहा कि भाई सूरज भी पीला ही पीला है और वह झाँझ करताल लेकर अपनी धुन को गाँधी के सुर में मिलाने लगा।

गाँधी गावे—

रघुपति राघव राजा राम।

और पीले को अपनी झाँझ करताल की धुन में यही यों सुनाई दे कि—

पीले पीले राजा राम
पतीत पावन पीले राम
ईश्वर अल्ला पीले नाम
सबको सम्मति दे भगवान

रंग को रंग खाने लगा।

गाँधी कहे यह न्याय नहीं। कोई किसीको दबा नहीं सकता। कोई किसी को अपना गुलाम नहीं बना सकता। न्याय भी जब अन्याय से अन्याय को दबायेगा तब बनी बात बिगड़ जायगी। अन्याय से अन्याय मरता नहीं, बल्कि दूना बढ़ जाता है। और इस तरह न्याय मारा जाता है।

गाँधी कहता रहा पर किसीने उसकी इस बातपर कान न दिये। जिस न्याय के बलपर कमजोर शहजोर बना, काले के ऊपर से गोरे का राज हटा उसी न्याय को अब बेकार पुराना और कमजोर माना जाने लगा। गाँधी ने काले का ईमान भी देख लिया।

दुनिया अपनी चाल चल गयी। गाँधी को तो न रिझा पायी पर काले को रिझा लिया। काला रंग भी अब दुनिया देखी बरतने लगा। उसने गाँधी से कहा, तुमने हमको राह दिखायी है इस लिए ठाकुरजी की तरह हम तुम्हारी पूजा करेंगे और तुम भी अब ठाकुरजी की तरह पत्थर के बनकर चुपचाप मन्दिर में बैठ जाओ। पत्थर के ठाकुर भला कहीं बोला करते हैं। वह तो सोने चाँदी के मुकुट पहन कर, हीरे जवाहरात के गहनों से सज कर, रेशमी पीताम्बर धारण करके सब की प्रार्थना सुना करते हैं। चोर उनसे अपने लिए बरदान माँगता है, शाह अपने लिए। तुमभी यों ही सबको बरदान दिया करो। यही न्याय की बात है।

गाँधी बोला मैं ऐसा न्याय नहीं मानता। मैं पत्थर का ठाकुर नहीं बनूंगा।

दुनिया ने देखा कि गाँधी यूं नहीं रीझेगा। तब उसने अपनी चाल बतायी। अधरम की कालिख अपने मुंहपर धरम की पाउडर मलकर गाँधी को गोली मारी गयी।

पूरब का सूरज इस बार पूरब में ही डूब गया।

गाँधी मरगया तो गाँधी के मन्दिर बनने लगे। दुनिया उसे पत्थर का ठाकुर बनाकर न्याय की सच्ची आवाज बन्द करने

लगी। और अपने अन्याय का न्याय कहकर खोटा सिक्का चलाने लगी।

लेकिन न्याय की बानी भी कहीं दबती है। सत्य के बोल तो हवा में गूंजते हैं, सासों में भरे हैं। गाँधी मरकर भी बोलता है। पत्थर का ठाकुर बनकर भी वह चुप नहीं रहा। उसने दुनिया में कहा कि तुम्हारे रंगबिरंगेपन पर मैं नहीं रीझूंगा। तुम्हारी यह रंगबिरंगी छटा धोखा है, झूठ है, अन्याय है। तुम मुझे तो पत्थर बना सकती हो पर मेरे न्याय और सत्य को पत्थर नहीं बना सकती। वह तो मेरी पत्थर की मूरत में से भी बोलेगा।

न्याय को अन्याय से तो कभी जीता ही नहीं जा सकता। न्याय को जीतने वाला एक है—प्रेम। उसके आगे दुनिया के सब रंग फीके पड़ जाते हैं। प्रेम का रंग ही पक्का है बाकी सब रंग कच्चे।

रंगबिरंगी दुनिया प्रेम के रंग गाँधी पर अपना रंग न चढ़ा सकी। राम करे जैसे गाँधी जिया, वैसे सब जिऐं।



मरण के उपरान्त।

—प्रतापनारायण श्रीवास्तव.

लाशें पर लाशें गिर रही थीं। उनके जख्मों से बहता हुआ खून उनके जोश को सदा के लिए ठंडा कर रहा था। इन्सान कहलाने वाले हैवानों का वह झुण्ड अपने पैशाचिक ताण्डव में इतना व्यस्त था कि उसे अपनेपन का ज्ञान नहीं था। अपने अस्तित्व को वह शैतान के हाथों बेंच चुका था, और शैतान अट्टहास के साथ उनको अपने ही प्रतिरूप में गढ़ रहा था। नाश के सभी उपकरण वहां पर अपने ज्वलन्त रूप से वर्तमान थे। आकाश को चूमती हुई लपटें मानवता को मिटाती हुई तेजी से बढ़ती हुई चली आ रही थी। चारों ओर छाया हुआ धूम अपनी कालिमा की चादर के नीचे मानवता के पशुत्व को छिपाने का प्रयत्न सा कर रहा था।

एक स्थान पर लाशों का ढेर कुछ ज्यादा था, जो इस बात की सूचना दे रहा था कि यहां जम कर लड़ाई हुई। खेत आने वाले जवानों में हिन्दू और मुसलमान दोनों थे। मरने के बाद

उन दोनों का भेद शायद मिट गया था, क्यों कि दोनों एक दूसरे के कन्धे से कन्धा मिला कर पड़े थे। यदि जिन्दगी ने उन्हें बर्बर पशु सा जघन्य बना रखा था, तो मृत्यु ने उन्हें फिर इन्सान में परिणत कर दिया था।

धीरे धीरे अग्रसर होती हुई अग्नि की लपटें अपनी उष्णता से उन ठंडी लाशों को पुनः जीवन प्रदान करने का प्रयत्न कर रहीं थीं। अन्त में उन्हें सफलता मिली। खून से लथ पथ एक लाश में जीवन का संचार हुआ। उसने एक करुण कराह के साथ अपने नेत्र खोले। उसी समय पास ही पड़ी हुई एक दूसरी लाश में भी प्राण संचार हुआ। उसने भी अपने नेत्र खोले। दोनों की आंखें चार थीं। दोनों ने एक दूसरे को पहचाना। उनमें एक हिन्दू था और एक मुसलमान! दोनों एक दूसरे को पहचानते थे। एक ही मुहल्ले में रहते थे। लड़कपन में दोनों साथ साथ खेले पढ़े थे, दोनों एक दूसरे के विवाह में सम्मिलित हुए थे, और दोनों एक ही जगह काम करते थे! उनमें से एक का नाम जफर था, और दूसरे का नाम कामता।

लेकिन आज उनकी दृष्टि में वह प्रेम नहीं था, वह विश्वास नहीं था। दोनों एक दूसरे के प्रति आशंकित थे। दोनों लड़ते हुए गिरे थे।

अतीत की स्मृति ने चुटकियां लीं, और दोनों ने अपने अपने नेत्र पुनः खोले। एक दूसरे के प्रहार से हैवानियत मर चुकी थी, और शुद्ध मानवता अपने प्रखर रूप में पुनः जीवित हुई।

जफर ने कराहते हुए कहा—"कामता, भाई।"

कामता के मन का मैल उसकी आंखों के बहते हुए पानी ने धो दिया। लड़कपन की घटनाओं ने उसके सामने आकर उसे धिक्कारना आरंभ किया। उसके मुंह से केवल यही निकला—"हां, भाई जफर।"

मन की परेशानी को आंखों की करवटों में छिपाने का प्रयत्न जफर करने लगा और कामता एक गहरी सांस के पेंदे में अपने मन के तूफान को डुबा देने का !

जफर—"भाई, प्यास लगी है।"

कामता ने उठ कर बैठते हुए कहा—"अब भी थोड़ी ताकत महसूस करता हूं। तुम पड़े रहो भाई, मैं जाकर कहीं पानी तलाश करता हूं !"

जफर की सांस घरघराने लगी। उसने कहा—"भाई, क्या मेरे लिए इतनी तकलीफ करोगे ?"

"क्यों नहीं। आखिर मैं भी तो इन्सान हूँ।" कामता अपना अन्तस्तल देखने लगा !

जफर ने कांपती हुई आवाज से कहा—"कामता, मैंने तो तुम्हारा सर्वनाश किया है। तुम्हारे बीबी बच्चों को मैंने ही मरवाया है।"

कामता के हृदय में एक मसोस उठी। उसके घाव ताजे हो गये। मूर्छा ने जिन्हें भुला दिया था, वे फिर सजग हो गए !

जफर कहने लगा—"मुझे एक बूंद पानी के लिए तड़प कर मरने दो ! आह ! जरा महसूस करने दो कि बेगुनाहों को सताने

का ऐसा मजा होता है। कामता, तुम्हें याद है, मैं तुम्हारी शादी में गया था। तुम्हारी बीबी को मैं भौजाई कहा करता था। जब कभी तुम्हारे घर जाता तो वे मेरे लिए एक से एक अच्छा खाना बना कर भेजतीं। मेरे......।"

कामता ने बात काट कर कहा—"जफ़र उन बातों की याद करने से क्या फायदा है ?"

जफर ने आंसुओं को पीते हुए कहा—"फायदा कैसे नहीं है! मैंने अपनी रूह को शैतान के हाथों बेच दिया था, अब उसे वापस छुड़ा रहा हूं।"

कामता चुप होकर बैठने का प्रयत्न करने लगा।

जफर कहने लगा—"वह दिन भी याद पड़ता है जब हमारा और तुम्हारा रास्ता दो तरफ फट गया। मुझे बताया गया कि मैं मुसलमान हूं, और तुम्हें बताया गया कि तुम हिन्दू हो। लेकिन हम दोनों आखिर में इन्सान हैं यह भूल गए। तुम हिन्दुओं का संगठन करने लगे, और मैं मुसलमानों का। तुमको मेरी सूरत से नफरत हो गयी और मुझको तुम्हारी से। पागल भैंसों की तरह हम एक दूसरे से लड़ने के लिए उतावले हो गये। मुहब्बत के जज्बे को अपनी कमजोरी समझने लगे, और आखिर......।"

जफर का गला रूँध गया।

कामता रोने लगा। उसने कहा—"मैं भी तो वैसा ही हो गया था भाई।"

जफर कराह उठा! वह कहने लगा—"तुम फिर भी अच्छे रहे। तुमने मेरे बीबी बच्चों को तो मौत के घाट नहीं उतारा ?"

कामता ने उत्तर नहीं दिया।

जफर—"खुदा ने तुम्हें उस गुनाह से बचा लिया, लेकिन मैं तो डूब गया। तुम्हारी मासूम बच्ची का खून मेरे हाथों में लगा हुआ है। उस पागल शैतानी भीड़ ने जब तुम्हारे घर पर हमला किया और तुम्हारे बीबी बच्चों को घसीट लाई तो मैं वहां मौजूद था। भौजाई को एक शैतान ने भाले से छेद डाला, और तुम्हारी लड़की गुलाब चिल्ला उठी। मुझे देख कर उसने कहा—"चाचा अम्मा को बचाओ।" मैं हँसने लगा। मेरे कुछ कहने के पहले ही एक दूसरे शैतान ने उसको तलवार के घाट उतार दिया। तुम्हारे घर को लूटने के लिए मैं आगे बढ़ गया। कामता! अगर मैं चाहता तो तुम्हारी बीबी को बचा लेता, तुम्हारी बच्ची को उन से छीन लेता।' आह, एक घूंट पानी।"

कामता ने आंसुओं को दबाते हुए कहा—"पानी कहीं से लाऊंगा। तुमको प्यासा नहीं मरने दूंगा।"

जफर—"नहीं, मेरे लिये पानी मत लाओ। प्यास से तड़पने में मुझे बड़ा आराम मिल रहा है। पानी की तड़पन मुझे इन्सान बना रही है, पानी पी लेने से शायद फिर शैतान बन जाऊं।"

कामता के घाव ताजे होकर चिल्लाने लगे। उसने कहा—"जफर भूल जाओ, उन बातों को भूल जाओ।"

जफर ने एक लम्बी सांस ली! वह फिर कहने लगा—"भूल जाऊंगा, दो मिनट बाद भूल जाऊंगा। फिर तुमसे कहने न आऊंगा। हां तुम्हारे घर को लूट कर बरबाद कर दिया तुम मुहल्ले के दूसरे हिन्दुओं को निकालने गये हुए थे, और इसी

दर्म्यान तुम्हारा सर्वस्व नाश कर के मैं तुम्हारी खोज में निकला। तुम जब उनको लेकर जा रहे थे, मैंने तुम्हें घेर लिया। तुम्हारे साथी हिन्दुओं ने भी लोहा लिया। आखिर मैं तो तुम तक न पहुँच पाया, बीच ही में किसी ने मार दिया। मैं गिर पड़ा और तुम्हारा क्या हाल हुआ नहीं जानता। जब आंख खुली तो तुमको देखा, और पहचाना।"

कामता—"बीबी बच्चों के मरने की खबर सुन चुका था। जो मर चुके थे उनके लिए रोने से कोई फायदा नहीं था। मेरी तरह से जो दूसरे मुसीबत में घिरे हुए थे, उनको बचाना ही परम धर्म था। अफसोस, मैं उनकी भी रक्षा नहीं कर सका। भाई, अब मुझ में भी शक्ति नहीं रही। खून मेरे घावों से निकल चुका है। प्यास से मेरा भी गला सूख रहा है। आग की लपटें उठ रही हैं, यह झुलस अब सही नहीं जाती।"

जफर ने कामता का हाथ पकड़ कर अपनी छाती से लगा लिया।

कामता भी वहीं दर्दनाक कराह के साथ गिर पड़ा।

जफर ने उसके पास खिसकने का प्रयत्न करते हुए कहा—भाई कामता आओ हम दोनों फिर एक बार चिपट जायें, जैसे होली के त्योहार में हम दोनों कभी एक दूसरे की भुजाओं में समा जाते थे। देखो, यह होली जल रही है। आओ इस में हम अपनी हैवानियत को, शैतानियत को जला दें। शायद इसीलिए तुम्हारे यहां होली का त्योहार बनाया गया है। होली जलाने के बाद गले मिलकर मुरझाई हुई इन्सानियत को ताजा करते हैं। वैसे ही हम भी अपनी दोस्ती को जिन्दा करें।

कामता बेहोश हो गया। उसने सुना या नहीं, कौन जाने ?

जफर खिसक कर कामता के पास पहुँच गया। उसने उसे टटोल कर अपनी ओर आकर्षित करना चाहा, परन्तु कामता बेसुधी की दुनिया में था।

जफर ने कहारते हुए कहा—"कामता, कामता! बोलो, ! मेरे गुनाह मुझे जला रहे हैं। मुझे··· ।"

इसके आगे वह न कह सका। आग की लपटें उन दोनों को निगलने के लिए तेजी से बढ़ने लगी।

जफर ने गों गों करते हुए अस्पष्ट स्वर में कहा—"पा···आ ···आ···नी, पा···आ···आ···नी !"

अग्नि की लपटें कड़क कर कहने लगी—"धू-धू। जल-जल।"

जफर चिल्लाता ही रहा—पानी, पानी ! मगर उसके स्वर को उन्होंने नहीं सुना, और निगलने के लिए अपनी लाल लाल जीभ को बाहर निकाल कर उनका रसास्वादन करने के लिए लालायित हो उठी।

जफर ने आखिरी प्रयत्न किया। कामता ने भी जोर मारा। दोनों की पुरानी दोस्ती ने भी जोर मारा। एक दूसरे को उन दोनों ने अपनी छाती से लगा लिया। हैवानियत का घर—दोनों का शरीर, जलने लगा।

जब आग बुझाने वाले आए, और वह बुझाई गई तो उन लोगों ने दो झुलसे हुए किन्तु पहचाने जाने वाले दो मनुष्यों को एक दूसरे से लिपटे हुए देखा। वे जफर और कामता के शव थे।

एक ने कहा—"देखो, किस तरह आपस में लड़ते हुए मर गए हैं।"

दूसरे ने कहा—"नहीं, ये लड़े नहीं, बल्कि हृदय से हृदय मिलाए हुए हैं। मालूम होता है कि दोनों अपनी हैवानियत को जलाकर इन्सानियत के दायरे में घुस रहे हैं।

पानी की धार कामता और जफर को पानी पिलाने का प्रयत्न करने लगी।



वह मानव था



देवी प्रसाद धवन 'विकल'



होलीपुर क़सबे में जब से राम लीला प्रारंभ हुई है, बूढ़ा क़ादिर ही दशहरे का रावण बनाता चला आया है। उसका रावण देखने के लिए दूर-दूर गावों से हज़ारों की संख्या में लोग आते और दशहरे के उत्सव में सम्मिलित होते। वह महीनों पहिले से खपच्चियाँ तैयार करता, काग़ज़ रंगता और राम लीला प्रारंभ होने से दस पाँच दिन पहिले ही रावण का ढांचा बना कर राम लीला के मैदान में खड़ा कर देता। इतना ऊँचा, भव्य तथा आकर्षक रावण आस पास के गावों में क्या बड़े बड़े शहरों में भी देखने को न मिलता। गांव के ज़मीदार इसके बदले में उसे दस मन अनाज, एक जोड़ा कपड़ा, मिठाई तथा ग्यारह रुपये सदा से देते चले आये हैं। यही उसकी जीविका थी। क़ादिर को अपने रावण पर इतना नाज़ था कि यदि उसके कार्य में कोई ज़रा भी नुकताचीनी करता तो वह बिगड़ उठता था।

अशान्ति के दिन थे। हिन्दू व मुसलमान एक दूसरे की शक्ल से बेज़ार हो रहे थे। अकारण ही मनुष्य मनुष्य के रुधिर का प्यासा हो उठा था। मानवता के नाम को कलंकित करने वाले कारनामों के समाचार पढ़ पढ़ कर बड़े बड़े हिन्दू-मुसलिम ऐक्य पर दृढ़ विश्वास रखने वालों के हृदय क्षुब्ध हो गये थे। राष्ट्रीयता की नौका साम्प्रदायिकता की उत्ताल तरंगों की थपेड़ों से अब-तब हो रही थी। इतिहास काले अक्षरों में लिखा जायगा, पाठक आश्चर्य करेंगे और हसेंगे, हमारी संतानें अपने पूर्वजों के इन कुकृत्यों पर लज्जा से सिर झुकायेंगी तथा उस बड़े दरबार के न्यायालय में किसी को क्षमा न किया जायगा, किन्तु फिर भी गन्दी राजनीति, धर्मान्धता, शौर्य और प्रतिहिंसा का झूठा बहाना लेकर मानव मानवता को भूल कर पशु बन गया था।

होलीपुर में यद्यपि ७-८ घर ही मुसलमानों के थे फिर भी वह इस हवा से न बच सका। जिन्ना साहब के भक्तों ने यहाँ भी हवाई पाकिस्तान की मूर्ति लाकर स्थापित करदी थी। यद्यपि खुलम-खुल्ला मुसलमानों का साहस न हुआ फिर भी अंदर ही अंदर घृणा की आग भड़का दी गई थी। उन्हें भली भाँति समझा दिया गया था कि 'इस्लाम खतरे में है' और हिन्दू हमारे शत्रु हैं।

यद्यपि दशहरे का त्यौहार निकट था फिर भी इस बार क़ादिर ने रावण बनाने का कार्य प्रारंभ न किया था। यद्यपि क़ादिर इतना बूढ़ा हो गया था कि अधिक चलने फिरने तथा काम करने से मोहताज था फिर भी उसका मन न जाने कैसा हो रहा था। वह झोंपड़ी के पास पड़े बांसों को देखता, कभी अपने औज़ारों को देखता और ठंडी सांस लेकर रह जाता। अब तक जमींदार के आदमी उसके पास न आये थे।

रात में बूढ़ी रशीदा ने खांसते हुए कहा 'कोई आया नहीं ?'

क़ादिर बोला 'ख़ुदा जाने अबकी मर्तबा गांव का रावण कौन बनायेगा ? अब दिन ही कितने रह गये हैं दशहरे के।'

कुछ देर चुप रह रशीदा बोली 'तुम्हीं चले जाओ न पंडितजी की कोठी में। लगी लगाई रोजी मुफ्त में चली जायगी।'

बूढ़ा क़ादिर चिंतित होकर बोला 'क्या करूँ कुछ समझ में नहीं आता। शायद किसी हिन्दू को यह काम दे दिया गया हो। यदि ऐसा हुआ तो जाकर मुफ्त की शर्मिंदगी उठानी पड़ेगी।'

रशीदा एक सांस लेकर रह गई।

मगर गांव के ज़मीदार पण्डित सिद्धनाथ भी इसी विषय को लेकर परेशान थे। न तो इस वर्ष क़ादिर मियाँ ही ने रावण बनाना प्रारंभ किया था और न कोई दूसरा ही प्रबन्ध हो सका था। हर साल बिना उनसे पूछे ही क़ादिर रावण बनाना शुरू कर देता था किन्तु इस वर्ष न जाने क्यों उसका काम अब तक प्रारंभ न हुआ था।

अन्त में अपने कारिन्दा राम प्रकाश को बुला कर उन्हों ने कहा 'इस साल रावण कैसे बनेगा मुँशी जी ?'

मुँशी राम प्रकाश आश्चर्य की मुद्रा बना कर बोले 'क्या क़ादिर मियाँ ने इंकार कर दिया बनाने से ?'

पण्डित जी बोले 'इंकार तो नहीं किया किन्तु आसार ऐसे ही मालूम होते हैं।

क्षण भर चुप रह कर मुँशी जी बोले 'तो क्या बुलाऊँ खां साहब को ?'

थोड़ी देर तक मौन रह कर पंण्डित जी बोले 'मारो गोली। क्या कोई हिन्दू कारीगर नहीं मिल सकता ?'

मुँशी जी कुछ कहने ही वाले थे कि सामने से लाठी टेकते हुए क़ादिर मियाँ आते दिखलाई दिये।

मुँशी जी बोले 'आखिर आये न ?' जल में रह कर भला मगर से वैर हो सकता है।

क़ादिर मियाँ ने पास पहुँच कर झुक कर सलाम किया।

पंण्डित जी बोले 'कहो खां साहब, अच्छी तरह हो न ?'

अदब के साथ क़ादिर मियाँ ने झुक कर कहा 'हुज़ूर का इक़बाल है। यों ही दरसन करने चला आया।'

'हूँ' कह कर पंण्डित जी चुप हो गये।

कादिर मियाँ बोले 'अब की दशहरे के बारे में हुज़ूर का क्या हुक्म होता है ?'

पंण्डित जी जरा भौंहों पर बल डाल कर बोले 'कैसा हुक्म ?'

क़ादिर बोला 'यही रावण बनाने की बात।'

पंण्डित जी ने कहा 'मैंने तो तुम्हें रावण बनाने से रोका नहीं। तुम्हीं ने, सुना है, अब की बार यह काम बंद कर दिया।'

क़ादिर ने आजिज़ि से कहा 'अब हुज़ूर से क्या कहूँ—मारे

क़ायिली के हुजूर के सामने आने की हिम्मत न हुई। मैने समझा शायद हुजूर किसी हिन्दू से.........

और बूढ़े मियाँ चुप हो गये। पण्डित जी बोले 'देखो खां साहब, मैं दूसरे ही दिमाग का आदमी हूँ। मैं इस तरह के ख्यालात को बहुत ही गन्दा और बे बुनियाद समझता हूँ।'

गद् गद् होकर क़ादिर मियाँ बोले 'सो तो हुजूर को मैं मुद्दतों से जानता हूँ। आप के ख्यालात की बुलन्दी से बच्चा बच्चा वाक़िफ़ है। मेरी खता मुआफ़ हो।'

उसने झुक कर सलाम किया। पंडित जी ने कहा 'आप अपना काम कीजिये। मैं आपको रावण बनाने वाला कारीगर नहीं बल्कि अपने क़सबे का एक बुजुर्ग समझता हूँ।'

बूढ़े कादिर की पुरानी आंखों में आँसू आ गये। उन्हें पोछता हुआ बोला 'मैं हुजूर का ताबेदार हूँ। बरसों से आप ही का नमक खाता आ रहा हूँ। आज कुछ नई बात थोड़े ही हो गई है।

पंडित जी ने कहा 'जाकर जल्दी काम शुरू कीजिये। वक्त थोड़ा रह गया है।

क़ादिर ने झुक कर सलाम किया और लाठी टेकता हुआ चल दिया।

मुँशी जी बोले 'सुना है खां साहब भी मुसलिम लीगी हो गये हैं।'

पंडित जी ने कह दिया। '—इनका विश्वास ही क्या ?'

घर पहुँच कर क़ादिर ने कहा 'जल्दी से मेरे औजार निकालो जहूर की मां। रावण बढ़िया बनेगा इस साल।'

रशीदा खुश होकर बोली 'बन जायगा रावण, पहिले दम ले लो।'

पास ही में बैठा हुआ क़ादिर का जवान बेटा ज़हूर हाथ में रोटी लिए खा रहा था, बोला 'हाथ पैर तो चलते नहीं रावण बनायेंगे। जाओ अब्बा आराम करो, मैं बना दूंगा रावण इस साल।'

क़ादिर श्रम और प्रसन्नता से थक कर हाँफ रहा था। खाँस कर बोला 'काम ला दिया, अब बनाना न बनाना तुम्हारे ही ऊपर है जहूर। मेरी हड्डियाँ नहीं चलतीं अब।'

ज़हूर बोला 'हां-हां-हां, जाओ आराम करो।'

उसी दिन क़ादिर को ज्वर आ गया। बूढ़ा शरीर और उस पर दमे का प्रकोप, न जाने कब मौत का निमंत्रण आ जाय।

दशहरे का उत्सव मनाया जा रहा था। राम लीला के मैदान में लाखों नर-नारियों के समूह के बीच में खड़ा हुआ आकाश-चुम्बी विशाल रावण मुसकरा कर कह रहा था कि 'मुझे देखो, आज मेरे ही साथ पशुता का भी अंत हो जायगा।' इस बार और वर्षों की अपेक्षा रावण अधिक ऊँचा और आकर्षक था।

राम ने रावण का अंत कर दिया। मानवता ने पशुता पर, उचित ने अनुचित पर, पुण्य ने पाप पर, न्याय ने अन्याय पर,

तथा रामचन्द्र ने रावण पर विजय पाई। 'राजा रामचन्द्र की जय' के साथ राम लीला समाप्त हुई।

रामचन्द्र जी की आज्ञा से हनूमान जी रावण में आग लगाने के लिए प्रस्तुत हुए। गाँव के सुक्खी गुरू हनूमान जी का सफल अभिनय किया करते थे।

हनूमान जी जैसे ही चलने को हुए वैसे ही भीड़ में एक ओर गड़बड़ी सी होती दिखलाई दी। कुछ लोगों ने समझा कि मुसलमानों ने ही कुछ अशान्ति पैदा करदी है। उत्तेजना फैलने लगी। ज़मीदार के आदमियों ने बतलाया कि एक मुसलमान ही गड़बड़ी पैदा कर रहा है।'

· कुछ ही देर में एक मुसलमान को पकड़े हुए कई व्यक्ति पंडित जी के पास पहुँचे।

वह क़ादिर था।

बुरी तरह हाँफने के कारण उसके मुँह से आवाज़ न निकलती थी।

पंडित जी ने डाँट कर कहा 'यह क्या गड़बड़ है खां साहब?' क्या तुम लोग राम लीला भी न होने दोगे ?'

क़ादिर की आँखें लाल थीं, सीना धौंकनी की तरह हाँफता हुआ था तथा श्रम से सिर हिल रहा था। उसने हाथ से इशारा कर के कुछ कहने की चेष्टा की।

पंडित जी कड़क कर बोले 'क्या कहना चाहते हो !'

खां साहब ने जल्दी से कहने की चेष्टा करते हुए कहा 'हुजूर ···रावण···रावण ··नहीं जल सकता···

पंडित जी जोर से बोले 'क्यों नहीं जल सकता! क्या तुम मुझको मुसलमानों का डर दिखला कर वाह वाही लूटने आये हो। नमक हराम कहीं का!'

क़ादिर ने बुरी तरह हाँफते हुए कहा 'न···न···न···हुजूर··· रावण नहीं जल·········

पंडित जी चिल्ला कर बोले 'चुप! हिन्दुस्तान के सारे मुसलमान मिलकर भी राम लीला और रावण का जलाना नहीं रोक सकते। हिन्दू अब इन धमकियों से नहीं डरते। सुक्खी गुरू, जलाओ रावण।'

क़ादिर लड़खड़ा कर पंडित जी के पैरों पर गिर पड़ा और बोला नहीं हुजूर···नहीं···हुजूर···खुदा के लिए रुक जाइये। रावण में···रावण में···रावण में रक्खे हैं बम·········

'बम' हठात पंडित जी के मुँह से निकला 'ऐं यह नमकहरामी।'

क़ादिर बोला लड़के का कुसूर माफ़ हो। मुझे थोड़ी देर पहिले ही मालूम हुआ है। रोकिये जलाना रावण का, नहीं तो सारा गांव बरबाद होजायगा। रोकिये···रोकिये···रोकिये···

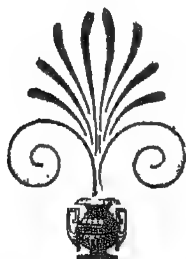
और क़ादिर ज़मीन पर लम्बा लम्बा लेट गया। धौंकनी बंद हो गई, आँखें पथरा गईं और बूढ़े क़ादिर के हृदय की गति सदा के लिए बंद हो गई।

गैवरण फाड़ा गया। उसके अंदर बड़े बड़े सात बम रक्खे हुए थे जो सारे गांव को समाप्त कर देने के लिए काफ़ी से भी अधिक थे। यह जहूर के द्वारा मुसलिम लीग के एजेंटों की कारस्तानी थी। क़ादिर को यह सब राज़ थोड़ी देर पहिले ही मालूम हुआ था।

उत्तेजित भीड़ ने कादिर के मकान को घेर लिया, पत्थर फेंके और पकड़ कर जहूर की हत्या कर डाली।

दूसरे दिन सबेरे बूढ़ी रशीदा पति और इकलौते पुत्र की लाशों के पास बैठी हुई आँसू बहा रही थी।

जहूर के चेहरे पर पैशाचिकता खेल रही थी किन्तु क़ादिर के चेहरे पर संतोष की मुसकान थी, क्योंकि उसने अपना और अपने परिवार का बलिदान देकर मानवता के नाम पर सारे गांव को नष्ट होने से बचा लिया था।



"पोस्टमार्टम"*

गंगा प्रसाद मिश्र।

बिहारी को सरकारी अस्पताल की नौकरी करते लगभग बीस साल हो गए! जिस वक्त वह इस अस्पताल में आया था बिलकुल लड़का था और यही काम करते करते वह अधेड़ हो गया है, यही कारण है कि पूरा अस्पताल आदर के कारण जमादार कहता है—नाम उसका कोई नहीं लेता! अपने अन्य कामों में से जिस काम में सब से ज्यादा कुशलता बिहारी ने प्राप्त करली है वह है—'पोस्टमार्टम' काम। लाश की चीर-फाड़ देखते देखते वह यह चीर फाड़ करने में खुद इतना कुशल हो गया है कि बड़े बड़े सिविल सर्जन इसके हाथ की सफाई पर दाँतों तले उँगली दबाते हैं। झिझक तो उसमें नाम मात्र को नहीं! मृतव्यक्ति ने क्या खाया था, अथवा यह जानने के लिए

---

*किसी दुर्घटना से मृत्यु होने पर लाश का सरकारी मुआयना, जिसमें शव को चीर फाड़-कर-मृत्यु का कारण जाना जाता है—'पोस्टमार्टम' कहलाता है।

कि विष से उसकी मृत्यु तो नहीं हुई है—डॉक्टर जैसे ही उसका आमाशय देखना चाहता है वह पेट इतनी आसानी से काट कर रख देता है जैसे कोई निःसंकोच तरबूज या कुम्हड़ा काट डाले ! डाक्टर जानना चाहता है कि मृत व्यक्ति के मस्तिष्क पर मृत्यु के समय क्या प्रभाव पड़ा है और जैसे ही वह बिहारी पर अपनी इच्छा प्रकट करता है बिहारी छैनी और हथौड़ा लेकर जुट जाता है और मिनटों में खोपड़ी अलग उतार कर रख देता है ! जैसे कोई निर्जीव लोहे की चीज पर छैनी हथौड़ी चलाने में जरा भी झिझक महसूस न करे वैसे ही वह यह काम करता है ! ऐसा मालूम पड़ता है जैसे उसे इस काम में कुछ खास दिलचस्पी हो क्यों कि यह काम वह करता बड़े मनोयोग से है। दुर्घटनाओं से मृत व्यक्तियों की हर जिले भर की लाशें इसी अस्पताल में आती हैं—इसलिए बिहारी पर काम भी थोड़ा नहीं पड़ता। अस्पताल में जो नए मेहतर या कम्पाउण्डर आते हैं वे बिहारी की इस कुशलता पर आशचर्य-चकित हो जाते हैं। "तुम्हें झिझक नहीं लगती जमादार, लाश पर ऐसे चाकू और छैनी हथौड़ी चलाते ?"—वे उससे पूछते। "झिझक किस बात की मालूम हो, भाई।" बिहारी गर्व और ज्ञान-मिश्रित-स्वर से कहता—"प्राण निकल जाने पर फिर वहाँ बाकी ही क्या रह जाता है—सिवाय मिट्टी के—जिसका मोह किया जाय। लाश के कौन चोट लगती है जो उस पर चाकू चलाने में झिझक लगे।"

"यह सब तो ठीक है पर सब लोग ऐसा नहीं सोच पाते, तुम्हारा दिल बड़ा कड़ा है।"

जमादार के मुख पर ऐसी मुस्कान खेलने लगती है जैसे

किसी ने बड़ी प्रशंसा करदी हो और वह कहता—भैया संसार के सब नाते रिश्ते सांस के ही साथ हैं, सांस न रह गई तो फिर कैसा प्रेम और कैसा मोह।

लोग कहते जमादार सचमुच बड़ा ज्ञानी है !

अभी उस दिन एक नवजवान की लाश आई जिसने रेल के नीचे कट कर अपने प्राण दे दिए थे, क्यों कि नौकरी न मिलने के कारण वह अपने परिवार का पालन-पोषण न कर पा रहा था। लाश के साथ ही उस खूबसूरत नौजवान की पत्नी पछाड़ें खाती हुई आई। अस्पताल के सब व्यक्तियों का हृदय करुणा से भर गया पर बिहारी वैसा ही अविचलित रहा ! जब डोली-नाश से वह लाश उठवा कर पोस्टमार्टम के कमरे में ले चला तो वह युवती लाश पकड़ कर बैठ गई—"अरे जरा मुझे दिखा दो मेरे राजा को, मैं न लेजाने दूंगी अपने प्राण को और दुर्गत होने को, अब और क्या बाकी रह गया है भगवान।"

"तुम्हारा राजा तो चल बसा बाई, अब तो यह मिट्टी रह गई है। मिट्टी का क्या देखना।" बिहारी ने उसे ज्ञान देना चाहा !

ऐसे अनेक मौके आते जब अस्पताल के लोग सोचते आज बिहारी ज्ञान न बघार सकेगा, आज उसका हाथ कांप जायगा पर सदैव ही उनकी धारणा निर्मूल ही सिद्ध होती।

एक रोज एक लड़की की लाश आई—१७ वर्ष की सर्वांग सुन्दरी युवती, जिसने वृद्ध पति से व्याहे जाने के विरोध में विष खाकर आत्म हत्या करली थी। उसके माँ बाप रोते रोते पागल हो रहे थे। सचमुच वह एक कली थी जो खिलने के पहिले ही

मुर्झा गई थी। जो देखता वही दुख कातर हो जाता पर बिहारी के माथे पर शिकन तक न आई।

सेठ फूलचन्द की उस पंच वर्षीया लड़की की लाश भी जब बिहारी को विचलित न कर सकी तो वास्तव में सब लोग हक्के बक्के रह गये कैसी सुन्दर थी वह गटापार्चे की गुड़िया सी, मालूम होता था—बस बोलना ही चाहती है। किसी हत्यारे ने उसकी सोने की हँसली लेने के वास्ते, छुरा मार कर उसे फेंक दिया था पर उसका मुँह फिर भी गुलाब सा सुन्दर लगता था।

उस दिन जब अस्पताल में पोस्टमार्टम के बाद सब नौकर इकट्ठे हुये और उन्होंने बिहारी को दूसरे शब्दों में हृदयहीन ही कह डाला तो वह बोला—"भाई संसार का जितना मोह है वह सब भावना और भावुकता पर है। बहुत कुछ भ्रम भी उस में सहायक होता है। जब मैं यह जानता हूँ—कि मनुष्य का शरीर जरा सी देर में नष्ट हो जाने वाला है और आत्मा जब अपना चोला बदल देती है तब तो इस शरीर से मोह करना मूर्खता है—तो मैं इस भ्रम में क्यों पड़ूं और अपना कर्तव्य पालन न करूं। तुम लोगों के मन में इस तरह की बातें इसलिये आती हैं कि तुम समझते हो कि मुर्दे को चोट लगती है। इसलिये लाश पर चाकू चलाने वाला बिहारी बड़ा कठोर है—पर यह है तुम्हारा भ्रम ही।"

सब लोग निरुत्तर हो गए, वे बिहारी की मोह—हीनता और कर्त्तव्य ज्ञान पर मुग्ध थे।

शहर में हिन्दू मुसलमानों का दंगा हो रहा था—मार काट मची हुई थी। बिहारी का काम उन दिनों बढ़ गया था पर वह अपनी ड्यूटी पर सदैव तत्पर रहता।

दिन भर के काम के बाद अस्पताल से शाम को बिहारी घर लौटा तो उसकी पत्नी ने बतलाया कि उसका इकलौता दस वर्ष का लड़का लगभग दो घंटे से गायब है। उसने उसे दिन भर घर से न निकलने दिया था पर वह जैसे ही कुएँ पर पानी भरने गई वह निकल भागा और तब से उसका कुछ पता न लगा। जहाँ तक बना उसने ढूंढ़ा भी पर सब बेकार।

बिहारी उल्टे पैर लौटा, थाने गया और शहर की गलियों में इधर से उधर चक्कर लगाता रहा। आज वह ममत्व का मूल्य समझ रहा था। लड़के के मिलने में जितनी देर हो रही थी, बिहारी की उद्विग्नता उतनी ही बढ़ती जाती थी। मील दो मील का चक्कर लगाकर वह फिर घर यह जानने के लिये लौटता कि बच्चा लौट तो नहीं आया है। रास्ते भर आशा निराशा की तरंगों में झूलता वह घर लौटता—पर घर पर पत्नी जैसे ही 'नहीं' में उत्तर देती उसका दिल बैठने लगता। वह दरवाजे से ही लौट आता और फिर उन अँधेरी सुनसान गलियों में अपने लाल को ढूंढ़ता, जहाँ थोड़ी देर पहले खून खराबा हो चुका था और किसी क्षण भी यह सम्भव था कि कोई गली में से निकल कर उसके पेट में छुरा उतार दे। बिहारी को अपने शरीर की बिलकुल चिन्ता न थी। कभी बलवाइयों के द्वारा मारा हुआ कोई व्यक्ति उसे दूर पर पड़ा दिखलाई देता तो उसका दिल धड़कने लगता। उसका मन यह विश्वास करने को तैयार न होता था कि उसके लाल की यह दशा होगी। आखिर उस अबोध बालक ने किसी का क्या बिगाड़ा था जो कोई उसके साथ यह सलूक करेगा। बिहारी ने सारी रात चक्कर लगाते ही काटी।

सुबह होते ही वह थाने पहुँचा तो उसने देखा कि कुछ

सिपाही उसके बेटे की लाश को घेरे हुए खड़े थे। देखते ही वह मूर्छित होकर गिर पड़ा। जब मूर्छा टूटी तो पागलों की तरह प्रलाप करने लगा, उसकी दुख कातरता का कोई ठिकाना न था। जब उसने दरोगा जी से लाश ले जाने की अनुमति चाही तो उन्होंने अपनी स्वाभाविक कड़कदार आवाज़ के साथ कहा— 'पोस्टमार्टम के लिये जायगी लाश।'

'पोस्टमार्टम' शब्द सुनते ही बिहारी के हाथ पैर कांपने लगे। आज उसे इस शब्द में एक असाधारण क्रूरता छिपी हुई मालूम पड़ी। लाश के चीरने का दृश्य उसके सामने आगया वह फटा हुआ पेट, फिर वह छैनी हथोड़ी का निर्भय रूप से सिर पर चलना और खोपड़ी का अलग हो जाना। इन बातों की कल्पना भी वह अपने बेटे के बारे में न करना चाहता था।

लाश के साथ वह अपने उसी पुराने अस्पताल में पहुँचा जो उसे आज विशेष रूप से भयंकर प्रतीत हो रहा था। सिविल सर्जन एक अंग्रेज था दो ही तीन दिन उसे बदल कर इस शहर में आए हुए थे। पुलिस से कागज मिलते ही वह अस्पताल पहुँचा और उसने आवाज दी—'जमादार।'

जमादार बिहारी डगमगाते पैरों से सिविल सर्जन के पास पहुँचा और एक कागज उसके हाथ में देदिया। सिविल सर्जन ने उसे पढ़ा—वह बिहारी का नौकरी से त्याग पत्र था।



देश-भक्त

प्रो० "अञ्चल"



लाला दुनीचन्द शहर के व्यापारियों में इस समय ऊँचा स्थान रखते हैं। लड़ाई के शुरू होने के पहले उनकी एक मामूली परचून की दूकान थी, और थोड़ा सा रुपया लेन-देन में लगा था। लड़ाई ने लाला दुनीचन्द की किस्मत के चेहरे पर पालिश करदी, और वह चमचम चमकने लगा। परन्तु लालाजी की सम्पत्ति में सैकड़ों गुना वृद्धि हो जाने पर भी उनके 'प्रि-वार' स्वभाव और आज के स्वभाव में कोई अन्तर नहीं आया।

लड़ाई के पहले चावल रुपये का बीस सेर बिकता था। इसके बाद वही चावल रुपये का आध सेर, जाड़े की फसल बजार में आ जाने पर रुपये का सवा सेर और जुलाई आते-आते फिर रुपये का तीन पाव हो गया। लाला दुनीचन्द ने हजारों रुपये का चावल भरा, और लाखों में बेचा। पर आज भी वह पैसे को उसी सावधानी से रखते हैं, जैसे हिन्दू गृहस्थ जवान विधवा लड़की को कलेजे से लगाए रखते हैं।

यदि कोई कुछ कहता तो दुनीचन्द तत्काल उत्तर देते "भाई हम बनिया हैं। हमें मोटी चाल ही शोभा देती है। फिर हमने कौन दहाइयाँ बटोर लीं। लाला अबीरचन्द, हुकुमचन्द और कोमलचन्द को देखो। पचीसों लाख रुपया लिए बैठे हैं, पर··· हमारी कौन बिसात है ?···"—

मुनीम और कारिन्दे प्रशंसा भरी किन्तु अपनी दरिद्रता के अहसास के जल से भींगी आँखों को चपचपाते हुए कहते—',क्या बात है, लाला! इसे कहते हैं इन्सानियत। चाँदी की हवेली खड़ी कर ली, पर वही दीनता और बिनती। भगवान का लाड़ला है। ठोस लोगों का यही कारबार है।"—

उधर शहर के वातावरण में आग पल रही है। अकाल का दानव शहर को बूचड़खाना बनाए दे रहा है। मनुष्यता के टुकड़े टुकड़े हो रहे हैं। शहर की बड़ी बाजार वैभव कोलाहल तथा प्रकाश और बड़ी-बड़ी इमारतों, ऊँचे-ऊँचे महलों से घिरी बेरौनक और कुरुप मालूम पड़ने लगी हैं।

ऊपरी ढीमदाम होने पर भी अगल बगल की गलियों और बस्तियों में बने मैले टाट से ढके घिनौने घरों का उन्माद प्रेत-छाया बनकर भनभना रहा है। जैसे प्रतिशोध के लिए फुफकारता और ललकारता सती का मन, जिसका तन किसी आततायी ने अपवित्र कर दिया हो।

फुटपाथों पर मरभुखे भूख और रोगों में तड़प-तड़प कर प्राण देते हैं—दिमाग फाड़कर सड़ा देनेवाली दुर्गन्ध छोड़ते हुए। बिना हिचक के रातके अँधियाले में लोग उन्हें कुचलते चले जाते हैं।

लाला दुनीचन्द ने यह सब कई बार देखा है। एक उच्चकोटि के दार्शनिक की तटस्थता के साथ-साथ किस तरह लोग 'डस्टबिनों' में से कूड़ा निकाल-निकाल कर बिना हिचक के खाते हैं, और बाद में क़ै करते हुए किस तरह हैज़े की बीमारी में तड़पते हैं।

परन्तु लाला दुनीचन्द बंगाल के 'बार्डर' बिहार के एक शहर के कई पुश्त से निवासी होते हुए भी कमजोर बंगालियों की तरह हैं। लोग उन्हें नाज चोर कहते हैं और कभी-कभी उन्हें सुनाकर कहते हैं। यह लोगों की कायरता और कमीनापन है। जानते हैं न, बनिया लड़ाई झगड़े से दूर भागता है और पुलिस के आने को खानदानी मर्यादा का अपमान समझता है। कह लें केशरसिंह और कुबेरसिंह को कुछ। क्या वे मुनाफाखोर नहीं हैं, ? हैं और लाला दुनीचन्द की अपेक्षा कहीं बड़े।

बाहर से देखने में दुनीचन्द की दूकान बिल्कुल खाली रहती है। अनाज जब है ही नहीं, तो बेचें कहाँ से ? लेकिन कोठारों में हजारों मन अन्न भरा पड़ा है। शहर के मजदूर मरभुखे होते जा रहे हैं और आकर बजार में शरीफ बस्तियों में घुस जाते हैं।

उस समय सड़कों पर पड़े मर रहे, सड़ रहे और दम तोड़ते हुए कीड़े उत्तेजना में—स्नायुओं के क्षणिक तनाव में आकर उठ खड़े हो जाते हैं, परन्तु फिर जो गिरते हैं तो तूफान और आँधी के उठाए भी नहीं उठते, दिन भर यही उठने और गिरने का ताँता लगा रहता है और इन दार्शनिक कोठीवालों के सर्द खून में बेचैनी का एक भी शरारा नहीं उठता। जो भूखों मरता है, वह जीवित रहने का मूल्य जानता है, लेकिन जो भूखों मारता है—जो बाजारों, घरों, खेतों और कारखानों से कराहों और मृत्यु के स्वर निकालता

है वह जीवन केलिये फैले हाथों पर बेशर्मी से थूक भी नहीं सकता। वह तो दार्शनिक की सी मृत बेलौस तटस्थता लेकर बहियों की रकमें मिलाता रह जाता है, जब कि नीचे, ठीक सामने, सड़क पर जनता का महासागर प्राणों की सर्वनाशी तृष्णा, जीवित रहने की अबाध शक्ति, भूख की एक-एक मरोड़ से त्राण पाने का यत्न करती है, और उसके संघर्षों के बीच भावी प्रतिहिंसा की तीखी बिजली लपकती रहती है।...

दोपहर का समय था। सेठजी गद्दी पर पड़े 'कल्याण' का सन्तांक पढ़ रहे थे। इधर-उधर मुनीमों की पाँत बैठी थी। दूकान ऊपर से देखने में बिल्कुल खाली थी, पर आश्चर्य की बात है कि हिसाब लिखने वालोंका काम नहीं रुकता था।

सहसा सामने से मरभुखों की हाहाकार करती हुई भीड़ निकली। सेठजी कभी-कभी अखबार पर निगाह डाल लेते थे—पढ़ते थे कि हर हफ़्ते, हर बस्ती में सौ डेड़ सौ आदमी मरते हैं, पर सेठजी हमेशा से इन अखबार-नवीसों की झुठाई के कायल रहे हैं। अगर इतने आदमी मरते होते, तो यह छोटासा शहर कब का खाली हो गया होता। सामने से आती मरभुखों की टोली अपने शरीर पर रोगों की आग लिए थी। रामायण में पढ़ा शिव की बारात का दृश्य लाला के सामने घूमने लगा। परन्तु उनकी देहों में ऐसी घुन नहीं लगी थी—शिव की बारात के भूत-पिशाचों को, जिन्दगी और मौत की, कशमकश और रगड़ की, ऐसी घृणित शारीरिक और मानसिक बेचैनी के बीच नहीं विथरना पड़ा होगा। वे जानवर खा सकते थे और अवसर पड़ने पर आदमियों के गर्मागरम लोहू से अपनी भूख बुझा सकते थे...

सेठजी चौकन्ने होकर गद्दी पर बैठ गए। मुनीमों ने कलमें कानों में खोंसली और भाव-हीन, विकार-शून्य दृष्टि से यह जीवित लाशों का बेतरतीब सिलसिला देखने लगे। उनमें जीवन नहीं था। होता भी कैसे? वह तो इन्हीं धर्म-भीरु (१) लाला लोगों के गोदामों में भरा पड़ा था—केवल जीवनाभास की विकृत और कुंठित उत्तेजनाएँ थीं, जो एक क्षणिक भभक दे जाती थीं। लेकिन आज वे अकेले न थे, उनके साथ किसान सभा के लोग, मजदूर और विद्यार्थी कार्यकर्ता और पब्लिक थी। लाला को यह आज एक नया दृश्य लगा। हाथों में झंडे लिये सब एक पंक्ति में आगे बढ़ रहे थे। ये सब अकालनिवारण समिति के लिये चन्दा माँगने निकले थे। करोड़ों की सत्ता का सवाल है, तभी वे इन गलती हड्डियों का प्रदर्शन करने निकले हैं। वर्ना घुटती लाशों को लेकर कोई चन्दा माँगने नहीं निकला करता।

चिथड़ों का लिबास, धूप से जलती सड़क पर पैर घसीटता आगे जा रहा था। मर्द औरतें बच्चे सब एक दूसरे के पीछे न थे, अंग अंग सूजे हुए और नीले—आज महीनों से मर-मर कर तड़प रहे हैं—तड़प-तड़प कर मर रहे हैं। एक दूसरे से बात भी करता था, तो यही लगता था जैसे कोई मच्छर भनभना रहा हो। जुलूस के साथ भिन्नाते हुए चलने वाले मक्खियों के झुंड में उनके स्वरों की अपेक्षा अधिक जीवन की गर्मी थी। इंचों नीचे धँसी आँखों के साथ काँपते घुटनों और पिंडलियों का यह तरह तरह का सिलसिला—मिट्टी से लथपथ, धूल से भरा, क्षत-विक्षत, कुरूप-कुडौल, जैसे मकई के असंख्य सूखे डंठल हों।...

जब तक मुनीम जी आकर हवेली का फाटक बन्द करावें, तब

तक सब भीतर घुस आये थे, परन्तु हाते में शान्त और निष्क्रिय खड़े थे। खड़े थे, यही क्या कम है ?

समिति के लोग एक एक कर उस बड़े हाल में घुस आये, जहाँ पहले मुनीमों की पाँत की पाँत बैठकर हिसाब लिखती थी (जो अब गोदाम में बैठती है) लाला ने बैठे ही बैठे सामने की ओर इशारा कर कहा—"बैठिये ! कैसे तकलीफ की ? इन मरभुखों के साथ आप लोग कहाँ घूम रहे हैं ?"

"हाहाकार मचा है लाला जी ! सारा शहर फनाँ हुआ जा रहा है। हम लोग जी जान से जुटे हैं। आप से चन्दा लेने आये हैं। आप लोग यदि आगे न बढ़ेंगे, तो हमारा किया क्या होगा ?"

बाहर मच्छरों की भिनभिनाहट फिर आरम्भ हो गई थी। मरभुखे आपस में बात-चीत कर रहे थे। लाला दुनीचन्द ने उनकी ओर घृणा की दृष्टि से देखते हुए, किन्तु होठों पर मुस्कान लाकर बड़ी नम्रता पूर्वक समिति के लोगों से कहा—"पैसा देखने को नहीं मिलता बाबू ! रोजगार ठप पड़ा है, नहीं तो मुनीमों से यह कमरा भरा रहता था। अब क्या है ? किसी तरह दिन काट रहे हैं ? रोजगार होता, तो हम हाजिर थे। कोई गोशालावाला कभी नहीं गया। आप लोग तो सभी मुलाकाती हैं—रोज के मिलने जुलने वाले हैं। अनाज मिलता नहीं—क्या बेचें और खरीदें ? आप बड़े लोगों के पास जाइये—"

घंटे भर तक आरजू मिन्नत होती रही, पर लाला जी न पसीजे—"यह तो भाग्य की बात है और पूर्व जन्म के संचित कर्मों का फल। इन लोगों को इसी प्रकार मरना होगा तो हम-आप रोक नहीं सकते। बात असल में यह है कि लोगों का

ईमान बिगड़ गया है—स्त्रियों का चरित्र नष्ट हो गया है। उसी का ईश्वरीय कोप है। इसे हम क्या करेंगे बाबू जी? हम लोग तो तबाह हुए जा रहे हैं और आप लोग नाज चोर कह-कह कर और जले पर नमक छिड़कते हैं। इन मरभुखों में अक्ल कहाँ? आप लोग जो कह देते हैं, वही ये मान लेते हैं। आप लोगों को एक फिरके को दूसरे से इस तरह लड़ाना नहीं चाहिये। सारा अन्न तो लड़ाई की फौजों के लिये चला जा रहा है, उसे तो आप रोक नहीं सकते—बस उठते बैठते यही कहते हैं कि व्यापारी नाज-चोर हैं और अपनी कोठियों में अन्न चुराये पड़े हैं। मसल है कि धोबी से जीतते नहीं, गधे के कान उमेठते हैं। सरकार से बोलने की हिम्मत नहीं है, हम लोगों को आप हर तरह से सताते हैं। मेरे पास कुछ नहीं है। मुनीमों की तनखाह तक घर से दी जा रही है। आप लोग जाँय और माफ़ करें।"

बाहर मरभुखों का शोर बढ़ रहा था। समितिवालों के बाहर निकलते ही इधर-उधर मिट्टी के दाने बीनते हुए भिखारी इकट्ठे हो गये। और दल फिर आगे बढ़ा। बाबुओं के उत्साही लड़कों के मन में दुनीचन्द के यहाँ से कुछ न पा सकने का अफसोस था।

उधर लाला ने एक आराम और सहूलियत की साँस लेकर कहा—"मुनीमजी! सीधे का मुँह कुत्ता चाटता है। मँहगाई दिन पर दिन बढ़ती जा रही है और इन लोगों को चन्दा चाहिये। औरतों का झुंड लेकर चन्दा मागने निकले हैं। खाने को इन औरतों और मरदों को नहीं मिलता। फिर इतना बड़ा पेट कहाँ से आया? खाने को नहीं मिलता, भूखों मरती हैं, मगर रास्ता चलते इनका पेट फूलता है। इन्हें खाना दे देकर पालो—बाद में बच्चे जनने का इन्तजाम करो। अनाचार फैला है। ये मर्द और

औरत साथ साथ घूमेंगे, तो और क्या होगा ? हम लोगों के यहाँ की औरतें हैं—हफ्तों खाना-पानी न मिले, पर मजाल नहीं कि खिड़की पर कोई देख ले। समाज के कायदों के मुताबिक न चलोगे तो व्यभिचार बढ़ेगा ही। बारह तेरह साल की लड़कियों तक को लाज हया नहीं रह गई। शाम से ही रास्ता चलना मुश्किल है। जबरदस्ती हाथ पकड़ पकड़ कर खींचती हैं···।"

सहसा सामने से जिला कांग्रेस कमेटी के सभापति, मंत्री और कोषाध्यक्ष आते दीख पड़े। दुग्ध-धवल श्वेत खादी की धोती, कुर्ता और सर पर टेढ़ी किश्तीदार टोपी। मुँह में पान, आँखों में मस्ती और आत्म-गौरव की झलक। सेठजी देखते ही उठकर खड़े हो गये और दोनों हाथ फैलाकर स्वागत करते हुए बोले—"आइये! आप लोग तो रास्ता ही भूल गये। मगर क्यों नहीं, इतने बड़े देश की चिन्ता भी तो आप लोगों को रहती है··· मुनीम जी! ऊपर से शर्बत पान तो ले आइये। धन्य भाग, जो आप लोगों का आना हुआ। कुछ नाश्ता वगैरह भी मँगा लीजियेगा।"

"हम लोग चन्दे के लिए आए हैं, सेठ जी! आप···को जानते हैं न? वे आ रहे हैं।"—

"उन्हें सूबे भर में कौन नहीं जानता? वे तो काँग्रेस के खास लोगों में से हैं। आज्ञा दीजिए।"—

"आज्ञा कुछ नहीं। हम लोग धूम-धाम से उनका स्वागत करना चाहते हैं, और सरकार को दिखा देना चाहते हैं कि हम तुम्हारे साथ नहीं, उनके साथ हैं। आप जानते हैं, सब चीजें मँहगी हैं—हजारों का खर्च है। आप लोग भी अगर न देंगे,

तब हम क्या करेंगे ? उन्हें एक थैली भी भेंट करना चाहते हैं। हर शहर में उन्हें लम्बी-लम्बी थैलियाँ मिल रही हैं। यहाँ से भी उनका भारी सम्मान होना चाहिए। आप जानते हैं कि यह हमारे राष्ट्रीय सम्मान का प्रश्न है। कांग्रेस की शान देश की शान है। आप लोगों का दिया रुपया आजादी की लड़ाई को आगे बढ़ाना है। फिर कांग्रेस भी तो आपका कितना ख्याल रखती है। जो बात सही है, उसका ख्याल कांग्रेस हमेशा रखती है।"—

"जानता हूँ, नगरपति जी!"—दुनीचन्द ने सभापति को नम्रतापूर्वक सम्बोधन करते हुए कहा—"हम लोग सभी कांग्रेसी हैं। कभी कांग्रेस के काम से पीछे नहीं हटे हैं। आप लोग हुक्म भर दें। हम भी अपने दोस्त और दुश्मन का फर्क समझते हैं।"—

नाश्ता, शर्बत और पान के बाद वे लोग चलने के लिए खड़े हो गए। सेठ जी ने मुनीम को आँख से इशारा किया। एक-एक हजार के दो नोट मुनीम ने नगरपति की ओर बढ़ा दिए। नगरपति ने लेकर मंत्री को दे दिया।

कोषाध्यक्ष, जो स्वयं शहर के अग्रणी व्यापारी थे, और मुनाफा खोरी में पचीसों लाख रुपया पैदा कर चुके थे, दुनीचन्द से बोले—"पूरे पाँच तो दिए होते लाला साहब। इस समय तो भगवान की कृपा से महीने में लाखों का वारा न्यारा कर रहे हो। क्यों मंत्री जी!..."

"लाला दुनीचन्द से तो ज्यादा कहने की जरूरत कभी पड़ी नहीं। आप लोगों के बल पर ही हम इतनी बड़ी साम्राज्यवादी सरकार से लोहा लेते हैं। आप लोगों की सहायता के बिना कितने दिन हमारे आन्दोलन चल सकते हैं? पाँच कीजिए लाला जी!

अबीर चन्द, कोमल चन्द, मानिक चन्द, कल्याणमल. सबने पाँच हज़ार दिए हैं। आप क्या उन लोगों से कम राष्ट्र-प्रेमी और देश-भक्त हैं। एक तूफान तो बीत चुका सेठ जी, पर दूसरा सिर पर घहरारहा है। लाइए, जल्दी कीजिए। कम से कम और शहरों के मुक़ाबले में हमारी नाक रह जाय।"—

सेठ जी ने एक-एक हज़ार के तीन नोट और दिए।

नगरपति ने कहा—"आप से एक और निवेदन है। उनके आगमन के दिन आप को स्टेशन पर भी रहना होगा। हम चाहते हैं, हमारे नेता उन लोगों से मिलें, जो समय समय पर इस प्रकार धन से कांग्रेस की सहायता किया करते हैं। यों भी आपका कर्त्तव्य है कि आप स्टेशन पर उनका स्वागत करें।"

"अवश्य! मैं शाम को स्टेशन चलूँगा।....."—

"जेल से छूटने के बाद वे पहले-पहल हमारे शहर में आ रहे हैं। आप लोगों को बड़ी से बड़ी संख्या में पहुँचना है। अच्छा, जय हिन्द!'—

"जय हिन्द।"—सेठ जी ने दोनों हाथ जोड़ते हुए कहा।

दरवाजे से लौट कर वे गद्दी पर बैठ गए। इतनी बड़ी रक़म उन्होंने निर्विकार भाव से, बिना किसी पीड़ा के दे दी हो, ऐसी बात नहीं है। परन्तु देश के लिए और कांग्रेस के लिए देना दूसरी बात है।

"भारी रक़म ले गए।"—मुनीम जी ने लाला से कहा।

"कोई बात नहीं है मुनीम जी! एक हफ्ते में ही निकल आयेगा। इन लोगों का विरोध नहीं किया जा सकता। कल को फिर उन्हीं की सरकार बनेगी, और पचासों काम निकलेंगे। हम तो महाजन आदमी हैं। हमेशा हुकूमत का साथ देंगे। आज नहीं तो कल, कल नहीं तो परसों इन्हीं की हुकूमत होनी है और स्वराज्य भी मिलेगा तो इन्हीं को मिलेगा। फ़िक्र न कीजिए मुनीम जी। पाँच नम्बर के गोदाम में जो गेहूँ और चावल के दो-दो सौ बोरे बचे हैं, उनके लिए गाड़ोरिया का आदमी तीन बार आ चुका है। अब उनके रेट को मान ही लेना चाहिए। उनसे कल 'पार्ट पेमेन्ट' लेकर बोरे धीरे-धीरे उनके यहाँ पहुँचाना शुरू कर देना चाहिए।"—

"जी, अच्छा!"—मुनीम ने दाँत निकाल कर कहा।

"देशभक्ति ही जीवन है मुनीम जी!"—लाला ने एक काल्पनिक अवास्तविक और कुछ कुछ दानवीय गौरव से फूल कर कहा—"हम सब के खून में आजादी की चिनगारी सुलग रही है। देश के काम में, नेताओं की पूजा में हम कभी पीछे न रहेंगे। फिर ये लोग सब जानते हैं मुनीम जी! जनता इन लगों के पीछे भेड़ों की तरह चलती है। जहाँ एक बार पब्लिक में कह दिया—ये लोग तो व्यर्थ में बदनाम हैं, असली अन्न-चोर और मुनाफ़ाख़ोर तो सरकार है, विदेशी सरकार!—तहाँ इन मैले कपड़े पहने बाबुओं के लड़कों की बात कोई नहीं मानेगा, चाहे वे अकाल की कैसी भी तस्वीरें दिखावें। इन्हीं को साधना है हमको—फिर तो साल दो साल बेड़ा पार है। दूसरी तरफ देशभक्ति का पुण्य भी तो मिलता है, यह लोक और परलोक दोनों बनते हैं।"





—रांगेय राघव।

साँझ हो गयी है, सूरज डूब गया है और आकाश से एक सूना सा अन्धकार उतरता चला आ रहा है। गांव के रास्ते अब सुनसान होने लगे हैं। मोरों की केका कभी कभी सुनायी दे जाती है और उसके बाद सन्नाटा जैसे उसास लेकर एक लम्बी अँगड़ाई लेता है और उसके अनन्तर तह पर तह जमता सूनापन धीरे धीरे बरसता सा लगता है और···

मुरली खाती ने अपनी आरी और अन्य औजारों को उठाकर रख दिया और एक बार ऊपर के अट्टे की ओर देखा। उस समय घरों से धुंआ उठ रहा था। एक ठकदार औरत सिर पर घड़ा भरकर कुँए से धीरे धीरे लौट रही थी। उसने एक लम्बा कश खींच कर हुक्के को तनिक आगे सरका दिया और फिर आकाश की ओर देखा····

दूर कोई ललकार उठा। फुलवारी में से फटफटाकर कुछ पक्षी उड़े। मुरली ने सुना कोई उत्तर में चिल्लाया। कान खड़े हो गये।

इसके बाद कुछ लोग जोर जोर से चिल्लाकर बातें करने लगे जिनका कुछ भी अर्थ स्पष्ट नहीं था। हां, शब्द से इतना अवश्य मालूम होता था कि यह लड़कों का हुड़दंग नहीं है। फिर चटा-चट आवाज आयी। लाठियां बज रही थीं। मुरली उठ कर खड़ा हो गया। एक बार मन किया दौड़कर बीचबचाव करने जायें फिर विचार आया, कोलियों का मुहल्ला उधर ही तो है। जरूर आपस में कहा सुनी हुई है। जब वे ही लोग इकट्ठे नहीं हुए तो यह क्यों जायें? वह क्या कोई उनकी बिरादरी का है? न उनसे खान, न पान। फिर भी मनुष्य का हृदय था। उत्सुकता उसकी स्वाभाविक प्रवृत्ति थी।

कोई भयानक स्वर से चिल्लाया। किसी के ठठाकर हँसने का भीषण स्वर गूंज उठा।

भागने मत दीजो पहलवान—हांफते हुए किसी ने ललकारा।

अरे ले गई हरामजादी।

पकड़ ले साली को। आज इसे भी दो कर दें। इसी की लगायी आग है।

फिर लाठियां बजीं। एक हृदय हिला देनेवाला स्त्री का करुण चीत्कार अन्धकार में घिघियाकर बन्द हो गया।

उसके बाद लीजो दीजो हुई और बहुत से स्वर उठने लगे। शायद भीड़ इकट्ठी हो गयी थी। औरत मर्द और बीच बीच में बच्चों का आवेश भरा स्वर। कुछ नहीं। मुरली ने आवाज दी—कौन है रे?

पड़ोस से बूढ़े सुखराम ने खाँस कर कहा—क्या बात है?

लगता है फौजदारी हो गयी है।

देख तो क्या बात है।—सुखराम ने कहा और फिर वह स्वर ऐसा निस्तब्ध हो गया जैसे बोलनेवाला भी अन्धकार में एक-दम डूब गया हो।

जिस समय मुरली ने देखा रमल दयनीय मुख लिये सुबक रहा था और धूरी चिल्ला चिल्ला कर, रो रो कर दुहाई दे रही थी। केवल तुरसी था जो गम्भीर बैठा था। लालटेन की धुंधली रोशनी में मुरली ने देखा बूढ़ा, पतला दुबला, सूखा साखा, खून से भीगा हुआ था। उसके सिर में काफी चोट आयी थी। तीन घाव लगे थे जिनसे समय बीत जाने के कारण अब खून गाढ़ा होकर धीरे धीरे लीक पर इकट्ठा होता जा रहा था। बूढ़ा बिल्कुल निर्भय बैठा था।

चन्दन दर्जी ने आगे झुक कर अपनी राय में बिल्कुल डाक्टर की भांति मुआयना किया और वह उठा—उठ रे तुरसी! थोड़ा चूना ले।

किन्तु धूरी के हाहाकार में वह स्वर लय हो गया। स्त्रियों की रायें पत्थरों की भांति बरस रही थीं जिनका कोई अर्थ नहीं था। मुरली के हृदय में एक पसीज उठी और उसने तुरसी का कन्धा पकड़ कर कहा—तुरसी, सुनता नहीं है? रमल की अम्मा क्या कह रही है?

एक अधेड़ स्त्री ने आगे बढ़कर कहा—देखो, बिचारी के लट्ठ ही लट्ठ मारे हैं। डोकरी का सिर सूज गया है।

मुरली ने देखा धूपो की बाईं भौंह के ऊपर एक गुम्मड़ उछल आया था। बात का जैसे कहीं अन्त नहीं था। अँधेरा बढ़ता जा रहा है। निरबाध कोलाहल की कर्कशता से मोरों का आर्त्त स्वर अब फुलवारी से निकल कर गांव के कुत्तों को चुनौती दे चुका था। अनेक मर्द इकट्ठे हो गये थे जो तुरसी से बारी बारी से तथा एक साथ सवाल पूछ रहे थे और वह चुपचाप सुन रहा था। उसकी आखें ऐसी जल रही थीं जैसे खून से भींगा हुआ सूखे चमड़े वाला मटमैला गिद्ध घूर रहा हो। एक बार उसने एमल की ओर देखा और क्रुद्ध स्वर में कहा—क्यों रोता है रे? कोई मर थोड़े ही गया है। है किसी में मजाल जो तेरा कोई कुछ कर सके?

छोटा है, दहशत खा गया है—धूपो की चोट दिखानेवाली स्त्री ने कहा। तुरसी चुप हो गया।

धूपो का क्रन्दन बढ़ता जा रहा था। किसी ने डांटकर कहा—क्यों हाय हाय करती है? सुनने क्यों नहीं देती आखिर बात क्या हुई?

तुरसी ने मुड़ कर एक बार बुढ़िया की ओर देखा और उसके मुँह से जैसे बात फिसल गयी—औरत है।

स्वर में स्नेह था। अटूट शक्ति थी। बुढ़िया चिल्लाना बन्द कर के आंखों के पानी को फरिया से पोंछने लगी जैसे अभी भी उसका जीवन सार्थक है, अभी भी उसका मरद मरद है, डरा नहीं है। आगे बढ़ कर आँचल पसार कर कहा—ऐ कोई देखन सुननहार हो तो देखे! डाकरा का सिर फोड़ दिया है—लहू की धार बह रही है...

फिर कण्ठ रुँध गया। बल लगाकर फिर बोल उठी—कोई नहीं है हमारा गांव में—मैं इस गांव की बेटी लगती हूँ, आज तुम्हारे जीजा के सिर से लहू की धार बह रही है…

बूढ़ा तुरसी उठ खड़ा हुआ। एक बार उसने आकाश की ओर हाथ उठाकर कहा—उसने देखा है, इनने देखा है। किसने नहीं देखा। जो पीछे हटेगा सो अपने बाप का पूत नहीं, इस अन्याव (अन्याय) का बदला लिये बिना नहीं छोड़ूँगा…

सुबकने की आवाज बन्द हो गयी। पतला दुबला रमल भी बाप के पास आ खड़ा हुआ था। लोग सुन रहे थे। निर्भय स्वर से बूढ़ा सारे गांव को चुनौती दे रहा था। उसके स्वर में प्रतिशोध की आग धधक रही थी।

बात बढ़ने की थी, उसका घटना हर प्रकार से असम्भव था। धूपो ने घर में झांक कर देखा। धुंधला दीपक जल रहा था और डरी हुई रमल की बहू रतनी बैठी थी। उसके मुड़े हुए घुटनों पर उसका सिर रखा था और शायद वह चुपचाप रो रही थी। धूपो उसके पास चली गयी और थोड़ी देर उसे घूरती रही जैसे उसके पास वे कठोर शब्द हैं ही नहीं जिनके रतनी अपने आप को योग्य साबित कर चुकी है। फिर उसने धीरे धीरे द्वार की ओर अच्छी तरह देख कर और यह तय कर कि कोई निकट नहीं है कहा—कुलच्छनी! तेरे पीहर में यही होता था? मैं तो पहले ही कहती थी पर रमल के बाप ने मेरी एक नहीं सुनी। मैं तो जानती थी कि तेरे गांव में यही एक काम होता है।

रतनी ने कुछ नहीं कहा। चुपचाप शायद रोती ही रही। सिर भी नहीं उठाया। वह जिसकी आशा में थी अब वही तो हो रहा था। बच्चा बीमार हो जाये तो सुश्रूषा स्नेह के साथ क्या उसे डांटा नहीं जाता कि इतना क्यों खा रहा है ?

किन्तु धूपो इतने पर ही नहीं रुकी। उसने उसके कन्धे को झकझोर कर विषाक्त स्वर से झल्लाकर कहा—तू जरूर उसे चमक दिखाती होगी झमको। मैं तो उसी दिन खेत में उसे गाते हुए देखकर समझ गयी थी। पर मैंने कुछ कहा नहीं। घर की बहू है तू, कल तेरे बूते बंस चलेगा और तू मेरी जगह लेगी सो तनिक न सोचा गया तुझसे ?

एक बार रतनी ने सिर उठाकर बुढ़िया की ओर दयनीय नेत्रों से देखकर कहा—पर मैं क्या करती ? वे तीन थे। दोने मुझे जबरदस्ती पकड़कर मेरे मुंह में कपड़ा ठूंस दिया। मैं चिल्ला भी नहीं सकी। और तुमने देखा तो हल्ला क्यों किया ? जब बचाने की ताकत न थी तो बेआबरू करके ही तुम्हें क्या मिल गया ?

और रतनी की आंखों के आंसू टप-टप करके टपक पड़े। वह जैसे अवरुद्ध हो उठी थी।

बुढ़िया इस अप्रत्याशित उत्तर से एकदम चौंक उठी। उसने फुफकार कर कहा – तो तुझे यारों के साथ गुलछर्रे उड़ाने को छोड़ देती, तेरे गांव में होता होगा ऐसा। नहीं होता हमारे। समझी ? हमारे ऐसा नहीं होता। क्या समझी ? हाय परमात्मा सुन रहा है। क्या कह रही है ? अरी तेरे मुंह में आग लगे ···

मन में आया कि रतनी को दौंचकर धर दें किन्तु बात खुल

जाने के भय से विवश हो क्रोध से अपना सिर पीट लिया। यदि वह उसपर हाथ छोड़ती है तो अभी यह सारा गांव चिल्ला चिल्ला कर इकट्ठा कर लेगी और जो देखेगा सो जानेगा और थू करेगा। यह बात तो कैसे भी छिपानी ही होगी। किन्तु उसके शरीर की चोटें दुख रहीं थीं। क्या करे वह? दीप कांप रहा था। अँधेरे पर जैसे उँगली हिलाकर कुछ मना कर रहा हो, ऐसा नहीं, ऐसा नहीं। परन्तु धूपो यह नहीं सोच सकी। उसके दिमाग में एक भयानक उथल-पुथल थी। उसने निराशा से ऊपर देखा जैसे भगवान् से प्रार्थना कर रही हो, किन्तु भगवान् इन कचहरियों से कभी का निकाला जा चुका है। बुढ़िया का कर्कश किन्तु धीमा स्वर फिर खिसकने लगा। अब न हम इधरके रहे न उधरके। इस वक्त भी तो कुन्दन आया था?

आया था। मैंने द्वार नहीं खोला।

पर हमें तो खुला ही मिला था हरामजादी!

रतनी रनरना उठी। मनमें आया, प्रतिवाद कर उठे। किन्तु फिर सिर झुकाकर कहा—शोरगुल सुनकर खोल दिया था।

खोल दिया था कि आ जा। अब क्या धरा है जो इज्जत थी सो तो लुटा ही दी। बेटी, दूध कैसा ही दूध हो, गरम गरम तनपर पड़ेगा तो जलायेगा ही।

रतनी ने तड़प कर कहा—तो इन्तजाम कर दिया होता पहले ही। मैं नहीं जाती थी खेतपर। तुम ही कहती थीं कि हाथ पर हाथ धरे खा रही है···

और तेरा सत्यानाश हो जाय··कुछ बेहूदी और अश्लील

गालियां फूट निकलीं और क्रोध से बुढ़िया दांत किचकिचा उठी। एक बार रतनी ने आग्नेय नेत्रों से देखा। क्या है तो ? डरती है वह किसी से ? जिसमें उसका बस नहीं उसमें उसका क्या दोष। आंसू पोंछ लिये। फिर सिर उठा दिया। किन्तु अपराध की छाया अभी भी भीतर का संकोच बिल्कुल ही मिटा नहीं पायी थी।

रतनी खड़ी हो गयी। उसका यौवन उसके अंग अंग की श्यामलता में झलक रहा था। उसने सिसकते हुए कहा—तुम्हारे एक बेटी होती और उसके साथ ऐसा ही होता तो तुम उसे माफ न कर देतीं ? हमारे गांव के मरद ऐसे नहीं होते। तुम्हारे भैया ही ऐसे थे तो पहले ही कह देतीं।

धूपो का हृदय आर्द्र वेदना से पसीज उठा। कुन्दन एक भयानक पिशाच के रूप में कल्पना में आगया। आखिर रतनी करती भी तो क्या ? कुन्दन तो रमल का दूर का मामा लगता था। उससे क्या ऐसी आशा थी। स्त्री के साथ बलात्कार की इस विभीषिका की कल्पना ने उसके स्त्रीत्व की करुणा को जगा दिया किन्तु संस्कारों ने कहा—ऐसी स्त्री भी त्याज्य है, वह छिनाल है। और घृणा ने बढ़कर उसके पूर्व विश्वासों को बल दिया। उसके बेटे की ऐसी बहू ? मर जाये तो····जगत धरेजा करती पर उसके पूत के गले में चक्की का ऐसा पाट डला रहेगा तो वह कितने दिन पानी से बाहर रहेगा। और फिर उसी के खानदान पर ऐसी कठोर बात कहने का दुस्साहस कर रही है यह लड़की ? उसने कहा—तो ऐसी ही रानी थी तो चली जाती किसी बामन ठाकुर के सौत ? यहाँ नहीं निभेगी ऐसी। कुलटा ! हरामजादी, तेरी मां करती होगी ऐसा····

रतन लहर कर खड़ी हो गयी। और उसने तीखे स्वर में कहा—अब मत कहना ऐसी बात।

किन्तु धूपो क्रोध से पागल हो रही थी। उसने होंठ काटकर कहा—निकल जा यहां से रांड़···

किन्तु वाक्य पूरा नहीं हो सका। कहते कहते बीच में ही रुक गयी और आबद्ध सी होकर कहने के साथ ही जीभ काट ली।

अपने पुत्र की मृत्यु की इच्छा कर रही है वह? वैसे तो न जाने कितनी बार यह शब्द कहा होगा किन्तु इस बार तो जैसे वह शब्द एक भयानक सर्प बनकर मुँह से निकला था जो उसी के सुखस्वर्ग को डस लेना चाहता था।

रतनी निर्भय खड़ी रही। उसने सिर उठाकर कहा—तो धर रखो अपनी अपनी गिरस्ती। मुझे नहीं रहना है। भगवान जानता है, मैं निरदोष थी और अब भी निरदोष हूँ। मैं नहीं डरती किसी से। ऐसे घर में नहीं रह सकती मैं। सब तरह की गुलामी कर सकती हूँ पर रहूँगी ब्याहता बनके। रखना था रखा, नहीं पटती, जाती हूँ बाप के घर। मुँह दिया है तो खाने को न देगा···

इसी समय द्वारपर रमल दिखायी दिया। रतनी हांफ रही थी। उसकी आंखों में अपमान, विवशता, प्रतिशोध और दया की भीख सबको एक चुनौती ने दाब दिया था जैसे वह किसी से नहीं डरती।

क्या हुआ?—रमल ने सन्दिग्ध स्वर से पूछा?

जा रही है बाप के घर।—बुढ़िया फुंकार उठी।

जा रही है बाप के घर—रमल ने बात को धीरे धीरे तोड़ कर दुहराया, फिर बढ़कर कहा—मैं नहीं रोकता। पर एक बात पूछता हूँ। जवाब देगी?

रतनी ने कुछ नहीं कहा। सिर झुक गया।

पूछता हूँ—रमल ने आगे बढ़कर कहा—इस घर में तू क्यों आयी थी? किस नाते आयी थी? फिर आज छोड़कर क्यों जा रही है? यही है तेरा ईमान?

स्वर एक बार कांप उठा। औरत औरत को क्षमा नहीं करती, नहीं सुहाती। मैंने तो कुछ नहीं कहा। और यह मेरी मां है। दो बात तू नहीं सुन सकती?

उस दिन ढोल-ताशे बजे थे। धरम ने उस दिन उसे पति दिया था। वही तो उसका कमरा था, मालिक था। रतनी ने सुना; वह कह रहा है जो पूरी बिरादरी में हाथ पकड़ कर लाया था। सारे गांव ने गीत गाये थे उस दिन। लुगाई का और क्या सुख है, क्या धरम है, क्या पुण्य है। दो ठोकर भी दे तो क्या, वह पांव अपना ही नहीं है? क्या कहेगी दुनिया, जो चली जायगी वह? फिर क्या सुख है उसे संसार में?

अभिमान अब भी आगे ठेलना चाहता था, वह जो सरलता से कभी सिर नहीं झुकाता। किन्तु दोनों ही पैरों ने आगे बढ़ने से जवाब दे दिया। रमल सामने खड़ा है। उसका भी तो कोई कसूर नहीं। बदनामी हो रही है तभी तो उसे गुस्सा आया। फिर भी उसने कहा ही क्या है? आदमी कहां है वह? देवता है। और कोई होता तो दो लात देकर निकाल देता। पर क्षमा कर दिया है उसने।

मन कचोट उठा। आंखों की राह अभिमान का विष बह गया, वही जो शक्ति बनकर ताप की भांति था। कटे पेड़ की भाँति वहीं गिर गयी और फूट फूट कर रो उठी। कहाँ से लाती इतना साहस कि उसे भी ठोकर मार जाती ?

रमल ने देखा और चुपचाप बाहर चला गया। धूपो ने एक दीर्घ निःश्वास लिया।

बाहर अभी भीड़ थी अब सब अपनी अपनी रायें दे रहे थे। कुन्दन और उसके साथियों को सभी भला-बुरा कह रहे थे। अंधेरे में ऐसा कायर हमला किया और सो भी तब जब बेटा निहत्थे थे रमल तो भाग गया किन्तु धूपो लाठी की चोट खा गयी। नामरद। औरत पर भी हाथ छोड़ते नहीं हिचकिचाये ?

रमल—तुरसी ने अचानक ही कहा।

पुत्र ने पिता की ओर देखा।

तुरसी ने कहा—आज तैने बंस की नाक कटा दी। मर क्यों न गया पैदा होते ही कमीन—और दांतों से जीभ काट ली। जैसे कुछ कहना चाह कर भी कहने में असमर्थ था। चारों ओर देखा जैसे कोई जान तो नहीं गया। रमल ने सिर झुका लिया।

बूढ़ा क्रोध से काँप रहा था। उसने फिर कहा—इसका बदला लेना होगा, समझा। साला होगा अपने घर। मैं नहीं किसी का जीजा। समझा। चक्की पिसवाऊँगा, बेटा से चक्की।

धूपो ने स्नेह से रक्त की ओर हाथ में कपड़ा लेकर इंगित किया—अब ये पनाले चल रहे हैं इन्हें तो रोको। राम राम, सारी देही निचुड़ गयी। यह भी नहीं देखा कि बूढ़ा है।

हैं, हैं, क्या करती है। पुलिस में रपट करूंगा। वहां क्या दरोगा बिना खून देखे विश्वास करलेगा ?

कितना कठोर सत्य था। बिना रक्त देखे वह कैसे विश्वास करेगा। किन्तु तबतक ऐसे ही रक्त बहता रहेगा ?

उठा हुआ हाथ झुक गया। तुरसी ने फिर कहा—डागदरी (डाक्टरी) मुआयना कराके तब पोछूंगा इसे। घबराती क्यों है ? मुफत में खून गिरा है तो मुफत ही नहीं छोड़दूंगा बेटा को।

वृद्ध की प्रतिहिंसा स्थिर पाषाण सी हो गयी थी। वह अब न गाली दे रहा है, न उत्तेजित है। गुस्सा ठण्डा होकर रगों में व्याप गया है जिसमें रक्त से भी अधिक शक्ति है।

सारा गांव गवाही देगा—तुरसी ने विश्वास से कहा—सांच को आंच क्या ? पापी की खैर करे तो भगवान का नाम काहे का। मैं नहीं छोड़ूंगा।

वह उठ खड़ा हुआ। किसी में भी विरोध करने का साहस न था।

जिस समय वे दरोगा जी के पास पहुँचे सिपाही ने बाहर ही रोक कर सब हाल पूछा। तुरसी ने भारी स्वर से सब बयान कर दिया। सिपाही ने कहा—कुन्दन आया था। दो सौ दे गया है ?

दो सौ ! तुरसी ने लड़खड़ाती जबान से कहा।

दो सौ। —सिपाही ने सिर हिला जता दिया।

तो तीन सौ मैं दूंगा—तुरसी ने सिर उठाकर कहा। भले ही लड़ाई की नफाई भी उठ जाये, वह क्रोध के कारण अन्धा हो उठा था।

मैं कहे देता हूँ। सिपाही भीतर चला गया।

धूपों ने एक बार शंकित नयनों से देखा।

भीतर बुलाकर दरोगा ने गंभीर स्वर से कहा—सो तो ठीक है, जा डाक्टरी मुआयना करा ले। कुछ लड़की बड़की का किस्सा तो नहीं है ?

नहीं हुजूर।

किन्तु दरोगा घिसा हुआ था। उसने मुस्कराकर कहा—तो फिर फौजदारी क्यों हुई ?

हुजूर—तुरसी ने कहा—लड़ाई में कमा लिये हैं साले ने। गेहूँ पचाने को लोहे का पेट चाहिए।

दरोगाजी बोले—मामला बना दूंगा। और वे उठकर भीतर चले गये। तुरसी बैठा रहा। धूपो को इंगित किया। उसने धीरे से रमल से कहा—बेटा घर जाके रुपया ला। तुझे मालूम है कहां धरे हैं ?

किन्तु रमल में इतनी शक्ति कहां कि अकेला अंधेरे में घर तक जाये। कौन जाने राह में ही कुन्दन के यार दोस्त खड़े हों और अभी अभी तो वे यहीं थे ही। यहीं कहीं छिपकर खड़े होंगे। धूपो किंकर्त्तव्यविमूढ़ हो गयी।

रमल ने सुना और वैसा ही बैठा रहा जैसे उसमें जीवन ही शेष नहीं रहा।

धूपो ने करम ठोंक लिया। एक ओर पति दूसरी ओर पुत्र। दोनों की ही जान का खतरा था। किन्तु पुत्र के भय में पिता की उपेक्षा करने का कितना भारी साहस था पुत्र वह खिलौना। और पति का स्नेह दब गया। वह तो मरद है।

और पिता को क्रोध और स्नेह ने अभिभूत कर दिया। स्नेह इसका कि पिता की छाया है तभी तो अपने को बालक समझता है। जानता है जब तक बाप है तबतक उसके ऊपर लोहे का हाथ है और क्रोध इसका कि कम्बख्त ऐसा डरपोक है। लीजो हाथ में लाठी, फिर जुट जाये सारा गांव एक तरफ, पर वह जवानी के दिन चले गये। लाचार उसने सिपाही की ओर देखा।

वह उठा। सिपाही को साथ लेकर पहले घर गया। पीछे पीछे लालटेन लिये धूपो थी। बीच में रमल। घर जाकर उसने पाँच पाँच के गिनकर साठ नोट सिपाही के हाथ में दिये और पैर पकड़ लिये। सिपाही के मुंह से कुन्दन के लिए गाली निकली।

अब कुन्दन ज्यादा दे जाये तो ? धूपो ने प्रश्न किया।

जमादार हमारे हैं।—तुरसी ने केवल इतना ही कहा।

डाक्टर उस समय सो रहा था। जाकर जगाया गया।

उसने घाव देखा। एक घाव पूरे डेढ़ इंच का था। रक्त पोंछते ही दरार साफ दिखाई देने लगी।

डाक्टर ने सुनकर कहा—कुन्दन ! इतनी हिम्मत ! सरकार का राज उठ गया क्या ?

वह हंसा। और पट्टी बाँधने लगा। वृद्ध वज्र की भांति खड़ा रहा। अविचलित जैसे उसे कुछ हुआ ही नहीं।

इसी समय नौकर ने इशारा किया।

डाक्टर भीतर चला गया। नौकर ने धीरे से कहा—डाक्टर साहब, अभी वह आया था। मैंने कह दिया, सो रहे हैं। मुझे क्या खबर थी, यह बात होगी। कहता था तुझे खुश करदूंगा। हुजूर''''।

कौन था ? कहता क्यों नहीं ?—डाक्टर ने झुंझलाकर कहा !

कुन्दन था—नौकर ने काँपते स्वर से कहा।

कुन्दन—डाक्टर ने कहा—क्या कहता था ?

जो माँगेंगे सो दूंगा।

अरे—डाक्टर के मुँह से हठात् शब्द फूट निकला। कैसा सुनहला मौका हाथ से आकर निकल गया खरे दो सौ दे जाता सारा मुकदमा उसी के हाथ में है। अगर वह रिपोर्ट में जरासी गड़बड़ी कर दे तो एड़ी चोटी का जोर लगाकर भी तुरसी कुछ नहीं कर सकता। दबा हुआ है कुन्दन इस वक्त। इशारे की बात है। तो वह उसे टाल दे और कुन्दन को बुलवा कर एक बार उससे बातचीत तो करले। ईमान का सौदा है। उसने क्या सजा लायक काम नहीं किया ?

किन्तु अन्तरात्मा एक बार क्रन्दन कर उठी।

तुरसी का जर्जर शरीर आंखों के सामने घूम गया। वह अकेला है, दरिद्र है। क्या वह इतने भयानक घाव को भी घाव नहीं लिखेगा? क्या उस की प्रतिज्ञाएँ सब व्यर्थ हो जायँगी? पाप का नतीजा कौन नहीं भोगता?

डाक्टर ने स्थिर स्वर से नौकर से झुक कर कहा—जाकर कह दे फीस दे दस रुपये—ज्यादा लूंगा अच्छी मनचाही रिपोर्ट लिख दूंगा। गरीब आदमी है। उसका क्या किसी को भी साथ नहीं देना चाहिये? नौकर चला गया। डाक्टर अपने मन में प्रसन्न थे। नौकर तबतक सिपाही को समझा चुका था।

डाक्टर लौट आया। उसने धूपो की सूजन पर अपने हाथ से टिंचर आयोडिन लगाई और आश्वासन दिया कि गरीबों का संसार में ऐसा नहीं कि कोई हो ही नहीं। इतना बड़ा घाव तो उन्होंने बरसों से नहीं देखा था और सारा गांव देखता रहा किसीने भी कुछ नहीं कहा। उधर सिपाही अपनी बात कह चुका था। तुरसी ने सुना और समझा। उसने चुपचाप स्वीकार कर लिया। जैसे सेर वैसे सवा सेर। लुट जाय, खाक हो जाये, मगर कुन्दन की मस्ती झँझोड़कर निकाल दूंगा।

सिपाही ने हँसकर कहा—घबरा मत। सब वापिस मिल जायगा।

तुरसी ने निर्विकार हृदय से अनुभव किया।

रातको सिपाही तुरसी के घर ही सो रहा। घर का एकमात्र मैचा (बड़ी खटिया) उसके लिए बिछा दिया गया था।

रात का तीसरा पहर ढल चुका था। आसमान में तारे अब फीके पड़ चले थे। हवा बाहर सनसना रही थी।

बूढ़ा बड़ी देर तक बैठा रहा। पट्टी सिर पर बँधी थी। धूपो ने खटोला डालकर तुरसी को अपने सिर की कसम देकर लिटा दिया। अब सिर में दर्द होने लगा था। वृद्ध कराह उठा। रात के अन्धकार में उस एकान्त में जैसे पत्थर, वह जो अबतक कठोर पत्थर था, अब चटक उठा था।

रमल करवट बदलकर लेट रहा। सिपाही खर्राटे भरकर सो रहा था। और तुरसी सोच रहा था, रिस रिसकर जमा किये थे सो एकदम ही उठ गये जैसे वे उस खेतपर पहरा दे रहे थे जिसे आधा जंगली सुअर खा चुके थे। भयानक बेचैनी थी। कौन जाने पर फिर कब हमला कर दें।

उस रात कोई नहीं सोया।

भोर हो चुकी थी। तीन दिन से तुरसी खाट से नहीं उठा था। सारी देह टूट रही थी। धूपो रात दिन वहीं बैठी रहती सारे गांव में संवाद बिजली की भाँति फैल गया था किन्तु आपस में बहस करके भी सब अपना अज्ञान ही प्रकट करना चाहते थे कि वे दूसरों के विषय में कुछ भी नहीं जानते। उनकी राय में दूध का धुला कोई नही है और रमल की बहू के पीछे झगड़ा हुआ है, सब का यही अन्दाज था।

गांव के पंडित जी और मास्टर साहब दोनों ही ने कुन्दन को

सामने देख कर एक दूसरे की ओर भेद भरी आंखों से इंगित किया वे जानते थे। फिर भी पूछा—कैसे आया कुन्दन ?

कुन्दन पैर छूकर बैठ गया। पगड़ी उतार कर पांवों पर रख दी और कह गया कि पहले दंगा शुरू कर के जब तुरसी पिट गया तो पुलिस में जा रहा है। दरोगाजी उसपर मेहरबान हो गये हैं। महाराज, मैं तो कहींका नहीं रहा।

देख भाई कुन्दन, दरोगा का मामला है। इसमें—पंडितजी ने स्वर लम्बा करके कहा—हम बोलने वाले कौन ?

तो महाराज, अब मेरा कौन है ? मैं कहां जाऊँ ? कहो तो गांव छोड़ जाऊँ ?

पंडितजी पिघले। एक ओर भय था, दूसरी ओर ब्राह्मणत्व का अभिमान जिसमें से थोड़ासा, अपनी विद्या के बल पर छोटी सी ही सही, अर्जित सम्मान प्राप्त कर, गांव के मास्टर साहब ने बांट लिया था।

उन्होंने मास्टर साहब की ओर देखा। दोनों ने फिर इंगित किये और पंडितजी ने ऋषि विश्वामित्र की भांति अभय देकर कहा—तो संझा को आज तय कर देंगे।

जैसे जीवित ही त्रिशंकु को स्वर्ग पहुँचा देंगे।

शाम को जब गांव के दस मुअज्जिज आदमी इकट्ठे हुए तब दोनों पक्ष आ गये। तुरसी की बातें उठी उठी थीं। कभी कहता था, सारे गांव के आगे पांव पर पाग धर दे, माफ कर दूंगा।

जिसका जवाब लोग देते थे—साले की बहनोई के सामने

क्या इज्जत। जब घर की बेटी ही ब्याह दी, जिसकी मां ने पांव पूज दिये उस घर का बेटा क्या पांव छूने में हिचकिचायेगा ?

तुरसी के आत्मसम्मान को भीतर ही भीतर सन्तोष होता। धूपो चुप बनी रहती। लोगों के सामने रोती कि कैसे बूढ़ा तुरसी तीन दिन तक निराहार खटोले पर पड़ा पड़ा कराहता रहा और इस प्रकार उनकी करुणा की भीख पाने की अभिलाषा रखती। परन्तु गांव वाले इस कान से सुनते उससे निकाल देते।

तुरसी—पंडितजी ने कहा।

हाँ महाराज—तुरसी ने हाथ जोड़ कर हाजिरी दी।

हमने सुना है तुझसे कुन्दन का झगड़ा हो गया।

पूछ लो महाराज, वह क्या कोई दूर है ?—तुरसी ने ताना मारते हुए कहा।

कुन्दन—पंडितजी ने मुड़कर कहा—सुन रहा है ?

कुन्दन का सिर झुक गया।

क्या कह रहा है तुरसी, सुना ?

कुन्दन ने सिर हिला दिया।

हां, कहकर पंडितजी ने बढ़ावा देते हुए कहा—बोलता क्यों नहीं है ? और कुन्दन की धीमी सी हाँ सुनकर पंडित जी ने फिर मुड़कर कहा—हाँ भाई तुरसी, तो झगड़ा हुआ क्यों ?

तुरसी ने कुन्दन की ओर देखा। कुन्दन ने तुरसी की ओर। कुन्दन का हृदय उछल रहा था। क्या कहेगा तुरसी ? चाकू

खरबूजे पर गिरे, या खरबूजा चाकू पर। मौत खरबूजे ही की है। इतनी बड़ी बदनामी की बात कह सकेगा तुरसी? और यदि नहीं कहेगा तो कहेगा क्या?

और तुरसी उसे ऐसे देख रहा था जैसे कच्चा ही चबा जायगा।

कौन जाने साहब—तुरसी ने अभिमान से कहा—जाने कब की दुश्मनी निकली है। हमने तो कुछ कहा नहीं।

यह बात न जमनेवाली थी, न जमी। आखिर कोई तो वजह रही होगी। कुन्दन कैसा भी हो, पागल तो नहीं है।

मास्टर साहब ने मूछोंपर नीचे की ओर हाथ फेरते हुए कहा—भाई यह भी कोई बात रही, आखिर तू कोई उसका गैर है, अरे तेरा तो वह साला है···

तुरसी ने तड़पकर कहा—मेरा नहीं है कोई साला, न बहनोई। हम तो इस गांव में अकेले हैं। मैं तो जेल भिजवाकर रहूँगा। मुरव्वत तो उससे जो अपना हो, और जिसने घरकी घरमें न रखी तो उससे कैसी रसम?

उसके स्वर का संघर्ष व्यक्त था। एक लरज थी, एक जुम्बिश। पर हो तो क्या? बात खतम होते होते सुननेवालों ने एकदम कहा—ऐसी क्या बात कही भाई तुरसी। एक गांव में रहना है, एक जगह घर है। फिर भाइ समझौता तो दोनों ओर से झुके का नाम है।

पंडितजी ने हाथ फैलाकर कहा—कहदो मन की बात। यों बजती है यों, दोनों हाथ से····

और उन्होंने ताली बजाकर दिखायी।

कुन्दन सिर झुकाकर मुसकराया।

समझौता करोगे? और उन्होंने कुन्दन की ओर देखकर कहा—चोट तो तुरसी के लगी है। हरजाना तो तुझे देना ही होगा।.........चल धर दे इधर।

कुन्दन ने पैंतालिस रुपये पंडितजी के पैरोंपर रख दिये।

कितने हैं?

महाराज पांच कम पचास। पंडितजी के नयन फैल गये। तुरसी अडिग रहा।

मास्टर साहब अंग्रेजी भी थोड़ीसी पढ़ गये थे। जानते थे कानून तब कानून बनता है जब उसके पीछे डण्डे की मार होती है वरना भइया करने से कभी कोई अपने आप स्वीकार नहीं करता। समझदारी ही से ही काम लेना चाहिए। उन्होंने मूछें थपथपाकर कहा—पर मुकदमे को क्या तू आसान समझता है? बरसों की पिट जायेगी बरसों की।

पंडितजी ने सिर हिलाकर कहा—तू नहीं जानता मुकदमे-बाजी खेल नहीं होती। लड़ाई में कमाई की है तो उसे कल के काम के लिए बचाकर रख भाई। यह तो ऊँची जातों के काम हैं। बनिया हुए, बामन ठाकुर हुए।—और मुड़कर कहा—कभी कोलियों के भी मुकदमें सुने हैं भाई?

उपस्थित समाज हँस उठा।

मुरली ने सिर हिलाकर कहा—और क्या भइया। एक रातमें कितने ही उठ गये होंगे। तेरे गवाह है?

तुरसी ने आंखें तरेरकर कहा—भगवान की सौगन्ध, सारे गांव ने देखा। परमात्मा की गवाही सबसे बड़ी गवाही है। जो गांव धरम ही छोड़ दे तो मैं भी सब छोड़ बैठूंगा।

किन्तु इस बात का कोई प्रभाव नहीं पड़ा?

हम तो भाई चाहते हैं, आपस का झगड़ा आपस ही में तय हो जाय। अब उसकी श्रद्धा ही इतनी है तो यही सही और मास्टर साहब ने रुपये उठाकर धूपो की ओर फेंककर कहा—समझौता तो होकर रहेगा। मानने की बात है भाई। सारा गांव कह रहा है दस भले आदमी इकट्ठे हुए हैं। क्या नाम? ऐसी कोई डकैती तो है नहीं। रही रुपये की बात, तो यह रहे पचास रुपयें। अब देख तुरसी, तेरा भी तो साला है···

किन्तु तुरसी सोच रहा था। क्या यही उसके अपमान का बदला है। कह कुछ सकता नहीं। सारे गांव से दुश्मनी मोल लेने का सवाल है। वह चुप हो रहा।

मास्टर साहब ने धूपो की ओर देखकर कहा—तो बस उठा ले···

धूपो ने तुरसी को देखा। उसने तो मना नहीं किया। रुपये उठा लिये। मास्टर साहब जानते थे कि किले का कौनसा हिस्सा सबसे कमजोर है जिसे सबसे पहले तोड़ा जा सकता है।

किन्तु तुरसी गम्भीर बैठा था। सारी सभा अतृप्त थी। यह

भी कोई फैसला हुआ ? किन्तु कुन्दन ऐसे बैठा था जैसे सागर से मोती बीन लाया हो।

सन्तोष दोनों में से किसी को भी नहीं हुआ। अभी भी कुन्दन का भय दूर नहीं हुआ था। अभी भी तो तुरसी पुलिस का पासंग लेकर भारी हो रहा था।

सांझ हो चली थी। जाकर पंचों के पांव पर पाग धर दी और पंचायत इकट्ठा करने का न्योता दे दिया किन्तु न खुशामद की न एक रुपया ही दिया। तुरसी की निर्बलता वह देख चुका था। बातें आवश्यकता से भी अधिक मीठी करके जिस समय वह लौटा यारोंने दूधिया छानी।

धीरे-धीरे गांव भर में, बिरादरी में खबर फैल गयी। रात भर औरतें दिमाग लड़ाती रहीं और रतनी का नाम ही उनकी जीभ पर नाच रहा था। बात ठीक थी पर सबूत न था और गन्दी बात सोच लेना क्या उनका अधिकार न था ?

तुरसी करवट बदल रहा था। तरह तरह के विचार आ रहे थे। रात में एक अजीब बेचैनी थी। यह कुन्दन ने एक नया खेल रचा था। जब गांव की सभा ने एक बात कह दी तो फिर पंचायत कैसी ? कुछ भी हो। बिरादरी का मामला है। पुलिस तो फिर भी अपनी ही है। केस तो फिर भी चलेगा ही यहाँ न सही, बेटा को वहाँ देखलूंगा। जायगा कहाँ ?

और तुरसी को तीन सौ रुपये ऐसे दिखते जैसे हनुमान अपना शरीर बढ़ाकर लंका जलाने को पूँछ हिला रहे हों।

दिन दुपहरिया पंचायत बैठी। कुन्दन अपने दोस्तों और घरवालों के साथ एक ओर बैठा। दूसरी ओर धूपो, तुरसी और रमल तथा उसकी बहू। धीरे धीरे सन्नाटा छा गया। काम शुरू हो गया।

पंचोंने किस्सा सुना। लोगों को सुना दिया गया। सरपंच ने, जब हुक्का घूम चुका तो गम्भीर स्वर से कहा—पंच सुनें। अब हम कुन्दन से पूछते हैं कि तूने हमें क्यों तकलीफ दी?

कुन्दन ने खड़े होकर झुक कर कहा—पंच भगवान का औतार है। झूठ नहीं कहूँगा। आपसी मारपीट की बात थी। गांव के बड़े आदमियों ने मामला तय करा दिया है पर जीजा का दिल अभी मेरी ओर से साफ नहीं हुआ है। इसी से बिरादरी की पंचायत इकट्ठी की है। हमारा एक घर है। जिसे हमने बहिन ब्याह दी है वह क्या अपना कोई गैर है? पर आपसी झगड़े कहां नहीं होते?

सब जगह होते हैं—बूढ़ों ने सिर हिलाकर स्वीकार किया।

कुन्दन ने फिर कहा—हमारी बेटी पराये घर में पराई हो जाये पर हम तो उसे अपना समझते हैं। भांजा तो नहीं छुआ हमने क्यों?—धूपो की ओर देखकर कहा—बोल?

धूपो ने सिर हिलाकर स्वीकार किया। स्त्री की इस मूर्खता पर तुरसी विक्षुब्ध हो उठा। उसने कहा—पंचों की दुहाई है। औरत कम अकल होती है। उसे बहका फुसला लेना बड़ी बात नहीं होती। भांजा, मैं पूछता हूँ, छोड़ दिया था कि भाग निकला।

कुन्दन ने पैंतरा बदला। बोला—जीजा का गुस्सा अभी बूढ़ा नहीं हुआ है।

पंचों ने रायें मिलायीं। कुन्दन ठीक कहता है। उसकी आवाज में तनक भी जास नहीं है। तुरसी की तो धधक रही है अभी दिल में।

फिर पंच ने पूछा—बहिन को क्यों मारा ?

बीच में आ गयी थी। तभी ध्यान आ गया कि रांड़ होगी तो बहिन ही। हाथ रोक दिया।

ठीक है, ठीक है—सबने हां में हां मिलायी—ऐसा हो सकता है।

तुरसी ने ओंठ क्रोध में काट लिया किन्तु क्या वह उस कठोर सत्य को खोले बिना अपनी बात पर लोगों का विश्वास दिला सकता है ? कनखी से देखा। रतनी घूंघट खींचे सिर झुकाये बैठी थी। उसे फिर क्रोध और स्नेह दोनों हो आये। तुरसी बोलने उठा—पंच परमेश्वर हैं। जो कहेंगे सो सिर झुकाकर मानूंगा।

बात अभी वह समाप्त भी नहीं कर पाया था कि किसी ने बीच में काटकर कहा—मगर झगड़ा तो मर्दों में होता है। घूपो पर लाठी कैसे पड़ी ? घर का द्वार बहू ने कैसे बन्द कर रखा था।

बन्द तो होता ही—तुरसी ने चमक-कर कहा—घरमें अकेली न थी ? फिर सास से कहासुनी हो गयी होगी। सास बहू के झगड़े कहां नहीं होते ?

जगत की रीत है—सबने कहा—होते रहे हैं और होते रहेंगे।

तो—तुरसी ने कहा—कुन्दन से किसने कही थी कि भांजे की

बहू का जिकर करता और सो भी पंचायत में। कैसे खबर पड़ी कि द्वार तब बन्द था कि खुला ?

कुन्दन के मुँह का रंग फीका हो गया था। उसने पूरब की ओर हाथ उठाकर कहा—गंगा मैया की सौगन्ध है। मैंने किसी से कुछ नहीं कहा। पर मुहल्ला जागता था। एक कान से सुनी बात दस जीभों पर डालती है। पंच कहें मैं कैसे जिम्मेदार हूँ।

पंच खामोश रहे।

तुरसी ने पंचों की ओर दोनों हाथ उठा ही कर कहा—पंच कहें। कुन्दन ने पैंतालिस रुपये दिये हैं सो क्या हरजाना ठीक है ? पुलिस को मैंने रुपये दिये। कुन्दन ने भी दिये। पर दंगा शुरू किसने किया ?

सरपंच ने आंख चढ़ाकर सिर हिलाते हुए पूछाः—पर दंगा क्यों हुआ ? तुझे कुन्दन ने क्यों मारा। कोई पागल तो वह था ही नहीं, न ?

मैं क्या जानूं ? तुरसी ने सरल उत्तर दिया।

तो वे रुपये कहां गये ?—पंच ने फिर पूछा—हाजिर करो।

धूपो ने चालीस रुपये पंच के पांव के पास रख दिये ?

गिनकर पंच ने कहा—यह तो चालीस हैं। पंच से दगा नहीं होगी। बाकी के रुपये कहां हैं ? क्योंरी बोलती क्यों नहीं ?

और धूपो के मुख पर स्याही छा गयी।

तुरसी ने तड़पकर कहा—बोलती क्यों नहीं ? बिरादरी पूछ रही है ?

धूपो ने सिर झुकाकर कहा,—खरच हो गये।

खरच हो गये ?—तुरसी गरज उठा, डायन ! तूने मेरी नाक कटा दी। दस दिन न रखे गये अलग ? और न थे रुपये ?

उसका आज जीवन में सबसे भयानक अपमान हुआ था। क्या करे ? औरत की जात ही ऐसी है।

धूपो ने सिर झुका लिया था। तभी किसी ओर से किसी ने आवाज दी। रमल उठकर चला गया।

पंच ने कहा—इसका तो दण्ड भोगना पड़ेगा तुरसी। बहू को समझादे।

तुरसी का हृदय हाहाकार कर उठा।

कुन्दन के साथियों ने ताना मारा—कभी तो पड़ही जाती है। दरोगाजी को दे दिये होंगे। आखिर सालेपर बिना वजह मुकदमा भी तो चलाना ही था।

क्या कहे अब ? कोई उत्तर ? मनमें आया वहीं मरजाये। किन्तु धूपो भी खड़ी रही और तुरसी भी सिर झुकाये खड़ा रहा।

तुरसी—पंच ने कहा—कहता क्यों नहीं ?

तुरसी ने बायें हाथ से माथे की पट्टी सरका दी। लम्बा घाव देखकर सब में सहानुभूति फैलगयी। कुन्दन अपराधी है। तुरसी ने एक बार चारोंओर देखा—

तुम जो कहो सो मुझे मंजूर है। मैं तो गुलाम हूँ।—उसने उन्मुक्त कण्ठ से कहा।

पंच प्रसन्न हुए। कुन्दन को अब पूरा विश्वास हो गया था। बाज़ी जीत लीथी। तुरसी के मुँह पर ताला पड़ा था।

और कुन्दन उत्साह से अब मन ही मन प्रसन्न अपने मित्रों की ओर देखकर मुस्करा रहा था।

पंचने कहा—झगड़ा हुआ। तुरसी कहता है उसे कुन्दन ने बे वजह मारा। कुन्दन कहता है छोटी सी बात थी, बातों में बढ़ गयी, मारपीट हुई। सुनने को तो यही ठीक लगता है। पर कुन्दन का भी तो कुछ कसूर रहा ही होगा। सजा उसे भी मिलनी चाहिये।

सबने सुना, पंचोंने फिर मशविरा किया और चौधरी ने फिर कहा—तुरसी मामले को पुलिस तक ले गया जिसमें दोनों के खूब खर्चे हुए। कुन्दन मामले को पंचों में लाया तुरसी पर भी दण्ड धरना चाहिए।

धूपो ने धीरे से कहा—पर हमने क्या मना की है? पंचों का न्याय सिर आँखोंपर।

बड़े बूढ़ोंने प्रार्थना की—फैसला सुना दिया जाय।

क्या होगा?—धूपो ने कातर स्वर से कहा। किन्तु तुरसी ने जैसे सुना ही नहीं।

वह ऐसे खड़ा था जैसे काठ की मूरत खड़ी करदी हो। वह जो अबतक निर्भय था इस समय विवर्ण हो चुका था। सिर का

लाल घाव ऐसा था जैसे माथे में तीसरी आंख हो—खूनी, जलती हुई। कुछ देर तक फिर परस्पर परामर्श होता रहा और तब सरपंच चौधरी ने कहा—धूपो ने पांच खरच किये, दस का दण्ड देगी; कुन्दन ने बूढ़े और औरत को मारा सो पचास रुपये दण्ड देगा और तुरसी मामले को पुलिस तक ले गया जिसमें दोनों का खरचा हुआ सो तीस रुपये दण्ड भरेगा और पंचों का फैसला है कि मामला यहीं खतम हुआ। आगे अपनी अपनी भुगतान होगी जो हुकम अदूली करेगा उसका हुक्का पानी बन्द।

अनोखा न्याय था!

धूपो के मुख का रंग उड़ गया। यह क्या हुआ? इसी समय रमल ने आकर कहा—अम्मा री, यहां पंचायत से क्या होगा? यह तो पुलिस केस है। अभी दारोगा को मुँहमांगी रिसवत देनी पड़ेगी नहीं तो वह क्या छोड़ देगा। पंचायत का जोर हमपर चलेगा कि उसपर भी चलेगा?

दुधारा चला। धूपो कातर स्वर से रो उठी।—हाय हम तो लुट गये।

वह भी होगा—तुरसी ने सिर उठाकर कहा—वह भी मैं ही दूंगा। परमेसुर की ही जब यह मर्जी है तो ये ही सही। बिरादरी की तो रखनी ही होगी।

रमल पुकार उठा—यह तो अन्याय है ''किन्तु तुरसी को कोई आपत्ति न थी।

मानवता जीवित है।

—ओमप्रकाश शर्मा।

स्मृति पुनः लौटती सी प्रतीत होने लगी। तो क्या मैं जीवित हूँ? अनिल के मन में बार २ यही प्रश्न आने लगा। आंखें खोलने का साहस वह न कर सका; भय अब भी उसपर छाया हुआ था।

एक २ करके उसे पूर्व की घटनायें स्मरण होने लगीं। आज से दस दिन पहले, वह आराम से अपनी छोटी सी कोठरी में बैठा पुस्तक पढ़ रहा था। छुट्टी का दिन था, "डायरेक्ट ऐक्शन" के कारण सभी सरकारी दफ्तर आदि बन्द थे। पाकिस्तान जिन्दाबाद के नारों से कलकत्ता गूंज रहा था।

दिन ढलते २ सभ्यता, संस्कृति, के विनाश के आसार दृष्टिगोचर होने लगे।........गृह-युद्ध; जीवन में प्रथम बार उसने गृह-युद्ध देखा। बहुत दिन से वह इस नाम को, बड़े २ सेठों, और दफ्तर के बाबुओं, से सुन रहा था। अखबार में भी इसके बारे में कभी लिखा होता था, किन्तु यह शब्द इतना प्रलय कारी है?

थे वह आज ही जान सका जबकि उसने अपनी आखों से गृह-युद्ध देखा।

बचपन में ही अनिल के माता पिता दुनियां से उठ गये थे। बड़ा भाई भाभी, छोटी बहिन, अकाल की भेंट हो चुके थे। अब तो अकेला था। इतने बड़े संसार में ऐसा कोई नहीं था, जिसे वह अपना कह सके। अकाल के पश्चात युद्ध काल में ही तो गाँव छोड़कर कलकत्ते आगया और एक फौजी दफ्तर में काम करने लगा। लगभग ढाई वर्ष वह कलकत्ते में रहा। जनता और पुलिस फौज में टक्कर होती उसने कई बार देखी। उनमें वह केवल दर्शक ही न था, यथा-शक्ति इन कामों में भाग भी लिया करता था।

जन-आन्दोलन की सुखद स्मृति से वह पुलकित हो उठा। रशीद दिवस के जलूस में वह उत्साह पूर्वक सम्मिलित हुआ था। जब जलूस पर अश्रु गैस चली तो उसके बराबर ही एक मुसलिम विद्यार्थी जिसके हाथ में हरा झण्डा था; बेहोश होकर गिरा। तब उसने तुरन्त उसके हाथ से झण्डा गिरते २ थाम लिया। तिरंगा उसके हाथ में पहले से था। दोनों झण्डे दोनों हाथों में लहरा रहे थे। वह समय, एकता का स्वर्ण अक्षरों में अंकित इतिहास क्या केवल स्मृति मात्र ही रह जायगा?

क्या वह स्वप्न था?

लाखों नागरिक असेम्बली भवन के बाहर खड़े एक स्वर से कह रहे थे—"हम राज-बन्दियों की रिहाई चाहते हैं।" उत्तर में प्रधान मंत्री ने नतमस्तक होकर कहा था—"जब प्रत्येक दल यही चाहता है, तो कोई कारण नहीं कि उन्हें न छोड़ा जाय"। तब

वह जलूस के आगे २ विजय के गर्व में "हिन्दू मुसलिम भाई भाई"; "सबकी दुश्मन नौकर शाही" के नारे लगाता जा रहा था।

क्या यह भी स्वप्न था ?

गृह-युद्ध·······किन्तु कलकत्ते का गृह-युद्ध देखकर उसकी आत्मा रो उठी। जिस एकता और आजादी के स्वप्न को प्रत्यक्ष और कल्पना के सहारे देखता रहा था, उसे वे सब गृह-युद्ध की आग में जलते प्रतीत होने लगे। आत्मा रो उठी; कलकत्ते की महानगरी से उसे घृणा होगई। उसी क्षण उसने निश्चय करलिया कि वह इस नरक में नहीं रहेगा। भूखा मरना श्रेष्ठतम समझेगा, किन्तु ऐसे स्थान पर नहीं रहेगा ? जहाँ मानव मानवता के शत्रु बनकर राक्षसों के कार्य कर रहे हों।

दूसरे दिन लगभग आधी रात गये वह अपने गाँव की सीमा के निकट पहुँचा। सीमा में प्रवेश करते ही "अल्लाहो-अकबर के गगन भेदी नारे उसे सुनाई देने लगे। आश्चर्य अवश्य हुआ, किन्तु भयभीत होने का कोई कारण दृष्टिगोचर नहीं होता था।

वह आगे बढ़ा··········और यकायक उसके मुँह से चीख निकल पड़ी। सर्वनाश के चिन्ह उसकी आंखों के सामने नाच रहे थे। हिन्दूओं के घर जलकर राख हुऐ पड़े हैं। आंखों को विश्वास न होता था, कि उसका गाँव भी कलकत्ता बन चुका है।

"काफिर·······मारो जाने न पाय।"

नेपथ्य से यह ध्वनि सुनकर उसके मुँह से भय की चीत्कार निकल गई। वह उल्टे पांव दौड़ पड़ा। उसके पीछे राक्षस रूपी मानव एकदम उसके खून का प्यासा होकर दौड़ रहा था।

एक क्षण वह नदी के किनारे ठहरा।······क्या वह उनसे पूछे कि, मैंने तुम्हारा क्या बिगाड़ा है? तुम क्यों मेरे खून के प्यासे हो? इसके बाद भविष्य की चिन्ता छोड़कर नदी के अथाह जल में अपने को समर्पित कर दिया।

इसके बाद··········· ·········,

उसे कुछ शरीर में पीड़ा सी प्रतीत हो रही है। तो क्या वह अब भी इसी संसार में है? आंखें खोलने का साहस नहीं हुआ। समस्त साहस बटोर कर उसने हाथ से टटोलना शुरू किया। सचमुच वह जीवित है। किन्तु है कहाँ?

"कैसी तबियत है दादा?" किसी बालिका का कोमल स्वर उसके कानों में प्रवेश हुआ। भय दूर हो गया, अनिल ने आंखें खोलदीं।

"मैं कहां हूँ दीदी? अपने सिरहाने खड़ी बालिका से अनिल ने प्रश्न किया।

"हसनाबाद में।"

"मैं यहाँ कैसे पहुँचा?" आश्चर्य से अनिल ने पूछा।

हमारी किसान सभा के स्वयं सेवक अपनी सीमा पर दंगाइयों की साजिश को रोकने के लिये दिनरात पहरा देते हैं। कल आधी रात के समीप नदी में तुम बहे जा रहे थे। रहमान दादा ने तुम्हें निकाल लिया। मैं तुम्हारे लिये दूध ले आऊँ, शशधर काका जी कह गये थे कि तुम्हें चेत होते ही गरम दूध पीना चाहिये।

बालिका कुछ क्षण पश्चात दूध लेकर आई। गिलास अनिल को देते हुये कहा—"लो दादा पीलो। अम्मी भी तुम्हें देखने आरही हैं।"

"तुम्हारा नाम क्या है, दीदी।"

"रजिया।"

अनिल के आश्चर्य की सीमा न रही। तो क्या उसे मुसलमान परिवार में शरण मिली है ? प्रत्यक्ष सत्य देखते हुऐ भी उसे विश्वास न होता था। जब देश की दोनों कौम एक दूसरे के खून की प्यासी बनीं हों; बड़े २ पूंजी-पतियों के पालतू कुत्ते कानून के तीस मारखाँ बैरिस्टरों की लीडरी देश को रसातल में पहुँचा रही हो ? क्या एक मुसलमान परिवार हिन्दू को आश्रय दे सकता है। जब इन नालायकों ने चालीस करोड़ की बुद्धि में इस चतुराई से गोबर भर दिया हो कि मनुष्य २ के खून का प्यासा हो जाय ? हैवान बन जाय,………इन्सान ? वह कुत्ता बनकर अपनी ही जाति के खून का प्यासा बन जाय, कुत्ता ? हाँ, इस जाति में यह विशेषता होती है कि मनुष्य जाति की गुलामी हृदय से स्वीकार करता है, किन्तु अपने बन्धुओं के खून का प्यासा होता है।"

"दूध पियो न दादा। क्या सोच रहे हो ? रजिया ने विचारधारा के उठते हुऐ तूफान को भंग किया।"

"कुछ भी नहीं। अच्छा दीदी यह बताओ तुम मेरा नाम जानती हो ?"

"अनिल चक्रवर्ती" तुम्हारे हाथ पर जो लिखा है।"

एक आशा भरी मुस्कान अनिल के होठों पर छा गई। तभी घर में एक प्रौढ़ा स्त्री ने प्रवेश किया।

"लो माँ आगई।" रजिया ने कहा।

"कैसे हो बेटा।" माँ ने स्नेह पूर्वक सिर पर हाथ फेरते हुये पूछा। "अच्छा हूँ माँ। तुम्हारे परिवार ने मेरी जीवन रक्षा की है। इसके लिये मैं तुम्हारा जीवन भर अभारी रहूँगा। आज मैं हसनाबाद में साक्षात स्वर्ग के दर्शन कर रहा हूँ। तुम्हारा आदर्श पूजनीय है। आज सब सारे देश में भाई २ खून की फाग खेल रहे हैं। यहाँ अब भी मानवता जीवित है।

"कैसी बात करते हो बेटा, रहमान ने तुम्हारी जीवन रक्षा करके तुम पर कोई अहसान नहीं किया। तुम उसके भाई हो, इस विशाल देश का प्रत्येक नौजवान उसका भाई है। रहमान अकेला ही तो मेरा बेटा नहीं है? गोपाल, अविनाश, सन्तोष और तुम सभी तो मेरे बेटे हो। सभी तो रजिया के भाई हैं। नौआखाली से सैंकड़ों हिन्दू परिवार ने आकर यहाँ शरण ली है। क्या दोष था उनका, क्या यही कि वे हिन्दू थे? बेटा उन मासूम बच्चों और औरतों को देख कर हृदय रो उठता है। मत जाना अब कभी उस नरक में। यहाँ कम धान होता है तो थोड़ा थोड़ा सब बांट कर खा लेंगे।" माँ की आंखों में आंसू छलक आये।

कुछ देर मौन के पश्चात फिर माँ ने कहा—अच्छा बेटा मैं

चलती हूँ। यहाँ आये हुए सभी परिवार को किसान सभा की ओर से अनाज बांटना है। तुम्हारे पास रजिया है। रहमान मिलेगा तो उससे कहदूंगी, वह भी तुमसे मिल जायगा।

नरक फिर से स्वर्ग बनेगा क्योंकि की मानवता जीवित है। अनिल के मन में यह निश्चय दृढ़तापूर्वक जमता जा रहा था।



पराजय ?

—बंसीलाल यादव ।

हम कालों की बिना हिंसात्मक संघर्ष की सनातन मांग—'हमें स्वतंत्रता दो या मौत' एक दिन अकस्मात गोरों ने मानली। 'साम्राज्यवाद' उठा, 'जनतंत्र' आया। रात्रि गई, उषाकाल आया।—और फिर···वह पंद्रह अगस्त! स्वतंत्रता का शुभ पर्व! हमारे हर्ष की सीमा न रही और न रही सीमा—उस अह्लाद के विकृत प्रदर्शन की। एक विचित्र सी लहर लोगों को उन्मत्त बना गई····ज्ञानशून्य····पागल···! चोलियों के बंद टूटने लगे, यौवन उघड़ने लगा, मस्जिद और मंदिर गिरने लगे, लाशों का ढेर लग गया, रक्त की नदियां बह चलीं। चारों ओर धुंआ, आग, आर्तनाद, क्रन्दन, चीत्कार····बस यही। बस यही। और यही वह हर्ष का विकृत प्रदर्शन—वही वह आजादी की धुन जिसके सम्मुख विश्व चकरा गया, 'फ्रेंच रिवोल्यूशन' शर्मा गया और चंगेज तथा महमूद गजनवी की याद सजीव से, धुंधली पड़ गई।···हां, तो जब यह सब हो रहा था, तभी की यह बात है! अखण्ड भारत खण्डित हो गया था और दिल्ली के तख्त के तीन पाये कमजोर पड़ गये थे···और···और, हां,—तो तभी की यह बात है!

'वैस्ट पंजाब' के एक शहर में पिछले दस दिनों तक खूब लूट मची, खूब उत्पात किये गये! अमानुषिक अत्याचार और दानवता अल्प संख्यक समाज की छाती पर भार बन गये और जब वह बोझ असह्य हो चला तो वह अल्प संख्यक अपने प्राणों की रक्षा के निमित्त पाकिस्तान से भागने लगे। न हुकूमत थी, न न्याय था और न कोई फ़रियाद सुनने वाला—अल्प संख्यक भागने लगे। प्राणों का मोह था, जिंदगी की ख़ैर थी, बीबी-बच्चों का ख़याल था—टिकते भी—कैसे? पुलिस दुश्मन थी, पल्टन—हिंसक! वह टिकते भी कैसे?

इन्हीं दिनों की एक संध्या को, सरला ने देखा, उसके बाबूजी बहुत ही चिन्तित हैं! उसने अपने बाबूजी को इन कुछ दिनों से वैसे तो रोज ही चिन्तित पाया है, किन्तु आज उसकी अपनी दृष्टि में उसे अपने बाबूजी की वह चिन्ता कुछ विचित्र रूप से बढ़ी हुई जान पड़ी। चेहरा फ़क सा, नेत्रों में के क्रोध को कातरता निंगलन का उपक्रम कर रही थी और मुख—श्री पर असीम वेदना की स्याह पर्त पड़ी हुई थी।—यह सब उस सोलह वर्षीय सरला ने स्पष्टतया, घर में घुसते हुये अपने बाबूजी के मुख पर अङ्कित देखा। वह अकस्मात किसी भावी आशंका से हिल उठी।··· अधीर हो, झट से अपने बाबूजी के पास पहुंच गई और फिर कोमल किन्तु व्यग्र स्वर में पूछा—'क्या बात है बाबूजी, इतने चिन्तित क्यों?'

बाबूजी ने सरला के इस प्रश्न को कुछ सुना, कुछ नहीं और अस्वाभाविक हंसी हंसकर कहा—'कुछ नहीं···कुछ नहीं बेटा···' और फिर अनायास ही असीम स्नेह से सरला के सिर पर हाथ फेरने लगे! कुछ देर उनके हाथ वैसे ही सरला के बालों पर

फिरते रहे, उनकी उंगलियां कांपती रहीं ! और सरला ने उन हाथों का फिरना अनुभव किया, उनमें का कंपन भी अनुभव किया, इस बात ने उसे कुछ और जिज्ञासु बना दिया और वह कुछ और डर गई ! हाथों का फिरना···उंगलियों का कंप-कंपाना। जिज्ञासा, विस्मय, आंतक, स्पन्दन····

फिर सम्यक् छिटक कर बाबूजी घर के दालान में लम्बे २ डग भर घूमने लगे—इधर-उधर, अस्त-व्यस्त, निरूद्देश्य,—प्रेत की तरह, कभी दीवार को देखते हुये, कभी जमीन को, कभी···। और बरामदे में, एक कुर्सी के सहारे खड़ी पाषाण-मूर्ति-सी, जड़वत्—वह सरला अपने पिता के उन लड़खड़ाते पैरों को अनिमेष देखने लगी। कुछ देर दोनों ही चुप रहे, फिर सहसा सरला को भयभीत दृष्टि से देखते हुये वह बोले—क्या बताऊँ सरला ·· भागना चाहकर भी हम भाग नहीं सकते। हम बच नहीं सकते। भागेंगे तो बाहर पहरा रहेगा। कुछ भी विरोध करेंगे अथवा चिल्लायेंगे तो घर को आग लगा दी जायगी—"यही सब मुझे अभी २ अब्दुल कहकर गया है।"

अब्दुल का नाम सुनते ही सरला के प्राण सूख गये। वह शहर का माना हुआ बदमाश था। उससे पुलिस तक कांपती थी। और इन साम्प्रदायिक झगड़ों के दिनों में तो उसके उत्पात, उपद्रव तथा अनौचित्य की कोई सीमा ही न रही थी। हजारों को मौत के घाट उतार दिया, जी चाहा उसके घर में आग लगादी, जिस किसी जवान लड़की पर उसकी कुदृष्टि पड़गई तो बस, फिर तत्काल ही वह उसके घर में आगई। इस प्रकार, इन दिनों उसके खूब लूट का माल हाथ लगा था और कई सुन्दर, युवा लड़कियाँ घरों में से उठा ली गई थीं।···नैतिकता, मनुष्यत्व एवंम दयार्द्रता

उसके लिये कुछ अर्थ न रखते थे।···तो उसी अब्दुल का नाम सुनकर क्षण भर के लिये सरला का छाती में दिल रुक गया। उसे सारी परिस्थिति समझ में आगई। तो बहुत ही आर्द्र स्वर में बोली—'और उसने क्या २ धमकी दी है बाबूजी ?'

रोते-से-स्वर में बाबूजी बोले—वह तुम्हें चाहता है, सरला। यदि तुम उसे मिल गईं तो फिर वह कहता है, किसी की मज़ाल है जो हमारी तरफ देख भी जाय और सरला, उसने कहदिया है, वह आज रात को नौ बजे आयगा। यदि मैंने तुम्हें खुशी २ उसे सौंप दिया तो खैर है···नहीं तो···'

'बाबूजी'—सरला चिल्लाई।

'पर मैं क्या करूं बेटा, वह बदमाश है। वह हमें नहीं छोड़ेगा ···सरला।'

'यह नहीं होगा—यह नहीं होगा बाबूजी।' भय से विस्फारित नेत्रों से सरला अपने पिता को देखती रह गई।

'वह बहुत बदमाश है, सरला रानी···वह बहुत बदमाश है, मेरी बच्ची···' सरला के पिता शून्य, असहाय भाव से सरला को देखते रहे।

'नहीं २ बाबूजी, आप किसी भी प्रकार पुलिस को ख़बर कर दें···जाइये बाबूजी। जाइये···'

'चारों ओर पहरा है। वह खुद गुन्डों को लिये बैठा है। रास्ता बंद है, सरला। और फिर पुलिस भी तो सरला···'

सरला रोने लगी।

सरला के पिता ने उसके दोनों हाथ पकड़ कर कहा—सरला, सरला, तुम इतनी···सुन्दर ही क्यों हुई बेटा···? और सरला के बाबूजी फूट २ कर रोने लगे।

सरला उनकी छाती पर आ गिरी और मुँह छिपा लिया। सुबकियों और आंसुओं से उसके पिता की कमीज़ तर होगई।···

शाम के आठ बजे···। रोते २, सिसकते २ सहसा सरला ने पिता की छाती पर से मुँह हटा लिया और उठकर भीतर कमरे में गई। वहां जाकर उसने दिया जलाया—और एक कोने में तब वह दिया ऊंघता-सा टिम-टिमा उठा—और उसकी वह पीली २ लौ—वह मलिनशिखा, मृतक-सी। सरला ने विपन्न सूने मन से दिये को देखा, फिर बाहर की ओर देखा—चारों तरफ अंधेरा, सुंसान···। चारों ओर की यह स्तब्धता उसे बेहोश करने लगी। वह वहीं दिये के पास ज़मीन पर बैठ गई।

दहलीज पर खड़े सरला के पिताने तब उस दिये की टिम-टिमाती रोशनी में देखा—सोलहवें वर्ष में हिलोरें लेते हुऐ यौवन से उनकी उस सरला के अङ्ग-प्रत्यंग फटे पड़ रहे थे। ओसकण की भांति शीतल और सुन्दर—रूप। चाँद के टुकड़े की तरह दिव्य, अधखिली कली-सी आकर्षक—वह सरला—उनके विधुर जीवन का एक मात्र अवलम्ब। दुनियां में और उस जीवन में—वह सरला ही बस, उनकी सब 'सब कुछ'। पर अब वही सरला—उनका हृदय फटने लगा। उन्हें मूर्च्छा-सी आने लगी और तब वह संभलकर, वहीं सरला के पास बैठ गये।

टिक्-टिक्। टिक्-टिक्। सुई हटती जा रही थी।

'सरला'—

और सरला ने देखा, पिता के मुख पर ढेर विषाद की रेखायें पड़ गई थीं और वह उसे बहुत ही कातर नेत्रों से देख रहे थे, जिनमें से उनका संपूर्ण वात्सल्य उलझा पड़ रहा था। मुट्ठियां उनकी मिंची हुई थीं और तेजी से वह अपनी उंगलियों को मसल रहे थे।···

'सरला···अपन पिछवाड़े से निकल जांय क्या बेटा ?···पर बाहर पहरा है !'—चेतन मन कुछ निश्चय करता था और स्वल्प चेतन (Subconcious) मन तुरंत ही समस्या खड़ी कर देता था। उत्साही हृदय झुक २ जा रहा था।····और तब···

बाबूजी अधीर हो, उठकर पूर्ववत टहलने लगे थे। सरला एकाग्र बनी, एकनिष्ठ भाव से यह सब कुछ देख रही थी।

कभी उसके बाबूजी तेज़ चाल से घूमने लगते, कभी सहसा उनकी चाल में शिथिलता आजाती, कभी मुट्ठियां मिंचती, कभी खुल जातीं। कभी चँद पागलों की भांति दीवार की ओर देखते, होंठ चबाते और कभी कोने में पड़ी लकड़ी को उठा लेते।

'बेटा मैं पुलिस को खबर करदूं।···· पर सरला····' —और फिर दुगने उद्वेग को छाती में दबाये घूमने लगते। रुकते और घूमते। घूमते और रुकते। कभी क्रोध से उनके होंठ धूजते और कभी अशक्त-से ढह पड़ते। कभी अपने हाथों को ग़ौर से देखते और बड़-बड़ाते—नहीं २ सरला, मैं अब्दुल से लडूंगा। अभी मेरे हाथों की हड्डियां मजबूत हैं। वह तुम्हें मेरे जीते जी नहीं लेजा सकता सरला। मेरे मरने के बाद ही वह कुछ कर सकता है। ····वह अपने आपको निश्चयात्मक भाव से कहे जा रहे थे—'नहीं मरने दूंगा, नहीं मरने दूंगा···' और उन्हें लग रहा था, सामने

पीपल के पेड़ के पत्तों से जनित खड़-खड़ की ध्वनि भी मानों उसी निश्चय की आवृत्ति साथ २ ताल देते देते अधिकाधिक सी होती जा रही थी····नहीं मरने दूंगा, नहीं मरने दूंगा, नहीं मरने दूंगा····

और उधर, पिता की बुद्धि से अधिक गहरी कोई चेतना, उनकी प्रतिज्ञा से अधिक विशाल कोई सत्य सरला के भीतर जाग रहा था।···उसके मूक, मानस-पट पर कुछ मूर्तियां बन बिगड़ रही थीं—सीता की मूर्ति, सावित्री की मूर्ति···पद्मिनि की मूर्ति ···और ··

'सरला'।

सरला ने मुँह उठाकर अपने बाबूजी को देखा। पिता कह रहे थे···'मेरे मरने के बाद ही तुझे—'

'बाबूजी।' वह सोच रही थी, इनके बाद—बाबूजी के बाद भी क्या वह आदरमय जीवन होगा ? क्या इनके मरजाने से उसके दुःखों का अन्त होजायगा ?···दुःखों का अन्त ?—वह सोचती रही····सोचती रही और फिर अचानक, भागकर अपने बाबूजी को झंझोड़-कर बोली—'आप घबराइये मत बाबूजी। हम इतने अशक्त नहीं हैं। वह खुद निराश लौट जायगा पिताजी।'

सरला के पिता उस सरला को आवाक् देखते रह गये। अब्दुल स्वयं कैसे लौट जायगा, यह बात उनके बिलकुल समझ में नहीं आई, तो बोले—'तू यह क्या कह रही है ?'

सरला उसी स्वर में बोली—हां २, मैं ठीक कहती हूँ, बाबूजी। देखना वह लौट जायगा।'

सरला के पिता वैसे ही टहलने लगे।····

'नौ बजेंगे।'

सरला जैसे जग गई। पहले कांपी, फिर सजग हो गई।

सुई आगे बढ़ रही थी""साढ़े आठ""पांच मिनिट"'। बीस मिनिट ही रह गये।

'तुम मुझे धिक्कार रही हो बेटा, इसलिये कि मैं तुम्हारा बाप होकर भी नहीं रो रहा""तुम्हारा बाप होकर भी—पर फिर सरला, मैं तुम्हें प्यार करता हूँ। क्या तुम्हें मुझपर विश्वास नहीं?'

'है बाबूजी। मुझे है न। आप चिन्ता मत करिये। सब—ठीक हो जायगा।'

—सुई आगे बढ़ रही थी और इतनी तेज़ी से बढ़ रही थी मानों कोई प्रेतात्मा पंख लगाये उस पर बैठ गई हो और वह सुई विद्युत की भांति आगे खिसक रही है—आगे—जल्दी से नौ बजाने।

'''नौ बजने में पांच मिनिट।

सभी—मकान के बाहर से अब्दुल की आवाज़ गली में गूंज उठी—'मधु सूदन। मधु सूदन।' जैसे रात के काले पर्दे को चीरता हुआ शैतान का वह प्रचण्ड स्वर कानों से टकराने लगा—'मधु सूदन। मधु सूदन।'

'जाइये बाबूजी, दरवाज़ा खोल दीजिये। आप चिन्ता न करिये'''सरला कह रही थी और आगे भी उसने क्या २ कहा, सरला के पिता नहीं सुन सके। झूल २ कर एक ही आकृति उनके मानस-पट पर पूर्त हो उठी—अब्दुल। उसका वह डबल ब्रैस्ट-कोट, शलवार, चिकने बाल'''पहलवान-सा'''गुन्डा, लोफ़र'''।

जिसे अपनी भुजाओं पर विश्वास है, अपनी ताकत पर नाज़ है, जिसने आज तक पराजय नहीं देखी। जिससे पुलिस कांपती है, जिसने जिस लड़की को चाहा, ज़बरदस्ती घरों में से उठाकर अपने घर में डाल लिया। वही अब्दुल। आंखों में खून, मुख पर कुटिल हंसी, टेढ़ी भृकुटि वाला—वही अब्दुल····। गर्व, मद और अहंकार में चूर्ण—अब्दुल। जिसने पराजय अब तक नहीं देखी····। सरला के पिता ज्ञान-शून्य, चेतना-विहीन अवस्था में, पागल से खड़े के खड़े रह गये।····जड़वत्, विध्वंस-से····पाषाण।

'मधु सूदन। मधु सूदन।'—अब्दुल दरवाजे पर धक्के मार रहा था।

'जाइये बाबूजी, घबराइये मत····जाइये—'

हूल २ कर एक ही प्रश्न सरला के पिता के कानों में, मस्तिष्क में, समूचे शरीर, समूचे संसार में ध्वनित करने लगा—नहीं छोड़ेगा ? नहीं छोड़ेगा ? नहीं छोड़ेगा ?—फिर पिता नहीं, कब वह उस दरवाजे तक पहुंचे, और कब उन्होंने दरवाज़ा भी खोल दिया।—हां, जब अब्दुल से साक्षात हुआ, तो विस्मृति से निकल कर····जैसे यथार्थ के आंगन में आने से लगे।····

और उधर—खच्। सरला के नेत्रों में एक हृदय भेदी विस्मय छलक पड़ा और फूट पड़ी तेज़, दहकते हुये रक्त की एक लाल धार। हां, होठों पर हलका २ हास्य था, एक निर्मल, अपूर्व ज्योति। निद्रा, महा निद्रा, चिर शान्ति। सब शान्त, सब चुप।

जब अब्दुल अपने साथियों सहित सरला के पिता के साथ घर में घुसा तो देखा यह दृश्य।

और उसके नेत्र खुले के खुले रह गये। रक्त में उसका वह सुन्दर शिकार लथपथ पड़ा था। और तब अव्यक्त रूप से उसने अनुभव किया, जैसे उसके सारे स्वप्न, सारे अरमान, सारी इच्छायें उस खून से भरे लोथड़े की भांति निश्चल और सर्द पड़ गये थे। हिन्दू नारी ने जीवन में उसे आज प्रथम बार अपने नैतिक बल द्वारा पराजय दी थी जिसके तीव्र दर्शन के आगे उसके पैर उखड़े जा रहे थे। रक्त की लालिमा दिये की तीव्र लौ में भड़क कर, जैसे उसे निगल जाना चाह रही थी। ज़मीन पर बिखरे हुये खून से उठती हुई दुर्गन्ध में भरा तिरस्कार, घृणा उसे ज्ञान-शून्य बना रहे थे। और उसकी प्रेम-पात्री सरला के मुख पर अंकित —वह विचित्र गौरव, अभिमान, नैतिक बल—सब मिलकर जैसे उसके अब तक के अमानवीय तथा नारकीय जीवन को धिक्कार रहे थे। उसके साथी—सब हत-प्रभ से खड़े देख रहे थे। और उधर, सरला के पिता पागलों की भांति सरला की लाश के पास लोट रहे थे—'सरला, मेरी बच्ची यह तूने क्या किया—सरला···'

और रात्रि के उस 'कर्फ्यू पीरियड' में उनकी रुलाई फूट २ कर वायुमंडल में भर रही थी!

और इन्हीं सब को आंखों में भरे अब्दुल, नतमस्तक खड़ा था···। खड़ा रहा···फिर अपनी भुजाओं की ओर देखा, जिनपर उसे इतना दंभ था···और फिर एक निःश्वास छोड़, चुपके से मधु-सूदन बाबू के घर से बाहर हो गया! दलित-सा, पराजित-सा! अहंकार भी चूर २, अपनी ताक़त का विश्वास भी खण्डित!

···सारी रात सरला के पिता, अपनी बच्ची की लाश के पास बैठे रुदन करते रहे। उनकी वह रुलाई रह २ कर रात्रि के

दूसरे पहर से बाद तक फूटती रही। पर सरला नहीं बोली, वह तो किसी दूसरे 'पथ' पर ही अग्रसर हो चली थी।

'''अब भी रातों में चोलियों के बन्द टूटते हैं, यौवन उघड़ने हैं और हल्की २ कमसिन चीत्कारें वातावरण में भरती रहती हैं; मन्दिर गिरते हैं, मस्जिदें टूटती हैं, भगाई हुई हिन्दू लड़कियों के आगे तश्तरियों में गाय का गोश्त आता है और'''हर्ष के उस विकृत उन्माद में उन्मत्त हिन्दुस्तानी न जाने क्या २ करता है'''। पर इन सब से सरला को क्या ? हां, सरला को इन सब से क्या ? वह तो इन झगड़ों से, पापों से—तमाम बुराइयों से इतनी दूर है'''इतनी दूर, जहां झगड़े कहां ? और जहां मानवता यों नहीं लुटा करती।



इंसान या जानवर ?

—मधुकर खेर.

नगर के बाहर ही एक बड़ा भारी मठ है। उसके गगन-चुम्बी कलश को देखते ही देखने वाला मन्दिर के वैभव से प्रभावित हो जाता है। इस मठ को लोग राम जी का मठ कहते हैं। इसके महंत गोपी चन्द जी एक बहुत बड़े जमींदार और कांग्रेसी नेता हैं। महंत होने पर भी वे खद्दर के श्वेत कपड़े पहिनते हैं और उनने ही मठ के पंचों के विरोध करते रहने पर भी वहीं चर्खा यज्ञ भी किया था। मठ की एक बहुत बड़ी जमींदारी है और जमींदारी की आय पर ही मन्दिर का काम चलता है। महंत जी का रंग गोरा, शरीर गठीला और क़द लम्बा है। उनके चहरे पर दाढ़ी-मूँछ गायब रहती है और सिर भी घुटा ही रहता है। वे मठ में एक आसन पर बैठे सदैव माला फेरने के बदले तकली या चर्खा कातते दिखते हैं पर यह समय नियत रहता है। शेष सारा समय वे अपने अन्य कामों में लगाते हैं।

गोपी चन्द जी अपने को मठ का एक मात्र स्वामी और जनता का एक क्षुद्र सेवक कहते हैं। पूरे सूबे में उनकी धाक है और ऐसा कहा जाता है कि वहाँ के मामलों में सरदार पटेल भी उन्हीं की सलाह लेते हैं। पिछले अनेक वर्षों से उनको असेम्बली की सीट के लिये कांग्रेस का टिकिट भी मिल गया है। महंत जी का सदैव से जनता और सभा दोनों में ही मान रहा है। पिछले महायुद्ध के समय महंत जी अपनी अस्वस्थता के कारण कांग्रेस के आन्दोलन में भाग न ले सकते थे। सरकार ने भी उन्हें नहीं पकड़ा पर कुछ ही दिनों बाद उनने यज्ञ किया और भगवान् से अंग्रेजों की फासिस्टों के विरुद्ध जीत होने की प्रार्थना की। इस यज्ञ को देखने के लिये महंत जी ने टिकिट लगाया था और पूरी आय "वार फंड" के लिये दे दीथी। इसके बाद ज्योंही कांग्रेस के सूबे के प्रधान नेता छूटे तो महंत जी ने ही सबसे पहले उन्हें गुलाब के फूलों की माला पहिनायी थी। महंत जी ने जनता और सभा दोनों की ही सेवा करने का निश्चय करलिया था और इसे ही अपने जीवन का एक मात्र उद्देश्य बना लिया था।

महंत जी को देखते ही कोई भी व्यक्ति श्रद्धा से भर जाता है और उनसे बातें करते ही उनके प्रति आत्मीयता से भर जाता है। उनके स्वर में मिठास और बातों में मानों मिसरी रहती है। उनकी नम्रता दिल पर असर कर जाती है। महंत जी को इस बात का सदैव ही खेद रहता है कि अपने कोमल स्वभाव के कारण अपने कारिन्दों पर शासन नहीं कर सकते और ये कारिन्दे इसका अनुचित लाभ उठाते हैं। कई लोगों ने उन्हें कारिन्दों के प्रति कड़ा व्यवहार करने की सलाह दी पर महंत जी का एक ही जवाब रहता है—"मैं जानता हूँ कि ये किसानों को सताते हैं पर

इन लोगों को ठीक करने के लिये मैं तो बुरा नहीं बन सकता।" इसके आगे किसी को कुछ कहने का साहस भी न होता था। महंत जी यों अपने भाषणों में किसानों के प्रति काफी सहानुभूति प्रगट करते थे। वे यों किसानों की मदद के लिये चन्दा भी दे दिया करते थे पर स्वयं उन्हीं के गाँवों में किसानों की स्थिति ठीक नहीं थी। किसान कभी २ अपने दल बनाकर उनके पास पहुँचते थे पर सिवाय बातों के उन्हें कुछ भी नहीं मिलता था।

एक बार मैं मठ में गया हुआ था। उसी दिन उनके किसानों का एक झुण्ड मठ में पहुँचा। ये लोग कारिन्दे के खिलाफ शिकायत करने पहुँचे थे। कारिन्दे ने एक स्त्री को बेंतों से पीटा था। बात यह हुई कि वह कारिन्दा लगान वसूल करने को एक किसान के घर गया हुआ था। बातों ही बातों में कारिन्दे ने किसान को गालियाँ देना शुरू किया और अपनी बातों का जवाब पा किसान को बेंत से पीटने लगा। इस बीच में उसकी स्त्री आ गयी तो वह भी न बच सकी। इसी की शिकायत की जा रही थी और महंत जी सुन रहे थे। वे बीच २ में करुणा भरे स्वर में "हे राम" कहा करते थे। उनके मुख के भावों से ऐसा प्रतीत होता था कि कहीं वे पूरी कहानी सुनते २ रो ही न दें। पूरी कहानी सुनने पर उनने अश्वासन दिया कि वे पूरा २ प्रबंध करेंगे पर किसान इस भाँति की आशा भरी बातें कई बार सुन चुके थे इसलिये इतने जल्दी बहकने तैय्यार नहीं थे। उनने माँग की कि उसे वहाँ से हटाया जाये पर महंत जी ने कहा—"अरे भाई मैंने कह तो दिया कि मैं सब प्रबंध कर दूँगा फिर क्यों नहीं मानते। उसे यदि नौकरी से निकाल दूँगा तो उसके बाल-बच्चे क्या करेंगे? मुझे तो सभी तरफ देखना पड़ता है। भूल-चूक आदमी से हो ही

जाती है। उसने तो पाप किया ही अब मैं उसे निकालने का पाप क्यों करूँ। उसके बाल-बच्चों की आह मुझे ही तो लगेगी। फिर तुम लोग क्यों चिन्ता करते हो? थोड़े ही दिनों में हम लोगों का राज होने वाला है फिर हम लोगों से तुम्हारा वास्ता ही नहीं रहेगा।" किसानों ने फिर कारिन्दे की ज्यादतियों की फरियाद की। महंत ने इस भाँति कहा जैसे कि कोई वृद्ध बच्चे को फुसलाता है—"अच्छा उसने तुम लोगों को सताया और तुम लोग बदला लेना चाहते हो तो लो मुझसे ही लो मैं तुम्हारे सामने बैठा हूँ। तुम सब के सब मुझे जूते मारो और मैं चूँ तक नहीं करूँगा। एक बार कह दिया कि सब प्रबन्ध कर देंगे तो मानते नहीं। यदि मुझपर विश्वास न हो तो तुम्हीं लोग जमींदारी संभालो मैं एक शब्द भी न बोलूँगा।" यह कह वे किसानों की ओर देखने लगे। किसानों ने गिड़गिड़ाते हुए उन्हें अपना अन्नदाता बताया और उनकी कृपा पर अपना विश्वास प्रगट किया।

किसानों के लौटने के बाद में महंत जी के पास पहुँचा। मुझे उनसे एक सिफारिशी चिट्ठी लेनी थी। महंत जी मुझे जानते थे। वे बहुत दिल खोल कर मुझ से मिले। सिफारिशी चिट्ठी की बात चलने पर उनने कहा—"मास्टर साहेब मैं तो जनता का और आप का सेवक हूँ। मेरी चिट्ठी का किसी पर क्या प्रभाव पड़ेगा। किसी बड़े आदमी से लीजिये तो आपका भी कुछ फायदा होगा यों मुझे लिखने में कुछ भी आपत्ति नहीं है पर आप ही सोच लीजिये।" इसके बाद ही उनने अपनी कठिनाइयों की बात छेड़ दी। उनने कहा—"ये किसान यह नहीं समझते कि धीरे २ ही उनकी कठिनाईयाँ दूर होंगी। ये चाहते हैं कि मैं अपने कारिन्दे

को निकाल दूँ पर आप ही सोचिये कि यदि मैं उसे निकाल दूँगा तो बेचारे 'का क्या हाल होगा। यही होगा कि दर २ फिरेगा और उसके बाल-बच्चे भूखों मरेंगे।" मैंने उन्हें उनके प्रभाव और सम्मान की याद दिलाते हुए फिर सिफारशी चिट्ठी देने की प्रार्थना की पर उनने अपनी बात खत्म ही न की। वे अपनी अड़चनें बताते रहे तभी उन्हें एक चेले ने आकर नगर कांग्रेस कमेटी के प्रधान के आने की सूचना दी और उनने मुझसे क्षमा मांगी। उनने जाते २ भी मुझे कहा—"मास्टर साहेब अभी तो मैं व्यस्त हूँ पर फिर कभी फुरसत से आइये। मैं आपका सेवक ही हूँ जब चाहें तब मैं चिट्ठी लिख दूँगा पर यह सोच लीजिये कि उसका असर पड़ेगा या नहीं वैसे मुझे कोई उज्र नहीं है।" मैंने हाथ जोड़ उनसे विदा ली। मैं उनकी बातों से बहुत ज्यादा प्रभावित हुआ और हृदय में उनकी प्रशंसा कर रहा था।

इसी भाँति दिन व्यतीत हो रहे थे और महंत जी को असेम्बली का टिकिट भी मिल गया। महंत जी एम० एल० ए० हो गये। इधर ग्रामोद्धार पर कभी २ मासिक पत्रिकाओं में महंत जी के लेख भी निकलते थे पर इलेक्शन के बाद ही उनका क्रम बंद हो गया। चुनाव के पहले उनके अनेक स्थानों पर भाषण भी हुए थे और उनने किसानों की दुर्दशा का वर्णन करते हुए उनकी स्थिति सुधारने का आश्वासन भी दिया था। सूबे की कांग्रेस के प्रधान ने उनकी अनेक स्थानों पर प्रशंसा की और उन्हें कर्म त्यागी कार्यकर्ता बताया। पत्रों में महंत जी के त्याग और उदारता के संबन्ध में लेख आते थे। उनके विषय में यह बताया जाता था कि सन् '४२ के आन्दोलन में उनने बहुत ज्यादा रचनात्मक कार्य किया था। एक प्रसिद्ध कांग्रेसी अखबार ने

लिखा कि महंत जी बातें कम और काम ज्यादा करते हैं इसीलिये इस प्रोपेगेन्डा के युग में वे अधिक प्रसिद्ध नहीं हो सके। महंत जी ने मुझे भी शिक्षकों की परिस्थिति सुधारने का आश्वासन दिया। मैं जिला शिक्षक संघ का सभापति था। ऐसा पूरा २ आश्वासन पा हम सभी ने महंत जी को वोट दिया। महंत जी चुनाव में जीत भी गये।

अब महंत जी ने एक सेक्रेटरी भी रखलिया। यही महंत जी के सब काम किया करता था। सिफारशी चिट्ठी आदि लेने के लिये पहले इसी की पूजा करनी पड़ती थी। सेक्रेटरी को सब लोग अभी भी मुंशी जी ही कहते थे क्यों कि पहले वह उनका कारिन्दा था। वह पहले हिन्दू-महासभा का सदस्य था पर जब से सेक्रेटरी बना उसने खादी पहिनना शुरू करदिया। लोगों में वह प्रचलित हो गया था कि वह एक चिट्ठी के दस रुपये लेता है। चिट्ठी के विषय के अनुसार ही रुपये लिये जाते थे। कुछ लोग यह भी कहते थे कि इन रुपयों में महंत जी का भी हिस्सा रहता था। एक बार हमारे एक पड़ोसी अपने भाई के लिये महंत जी की सिफारिश पाने गये। वे रूपये नहीं देना चाहते थे इसलिये सीधे महंत जी के ही पास गये पर उनने उन्हें मुंशी जी के पास जाने कहा। उनने मुंशी जी से चिट्ठी लिखा लाने कहा। हमारे पड़ोसी महोदय ने स्वयं महंत जी से ही चिट्ठी लिखाने का आग्रह किया पर उनने गम्भीरता से कहा—"आप देख ही रहे हैं कि मुझे क्षण भर की भी फ़ुरसत नहीं है पर आप आये हैं तो मैं आपकी बात टाल भी नहीं सकता। आप मुंशी जी से अपनी पसंद से लिखा लाइये मैं हस्ताक्षर कर दूँगा।" हमारे पड़ोसी को मुंशी जी के पास लौटना ही पड़ा और उनसे बीस रुपये में सौदा

पटा। महंत जी की मंत्रि-मंडल पर बहुत धाक थी इसीलिये लोग उनकी खुशामद करते थे। अधिकारियों पर उनकी चिट्ठी का प्रभाव भी पड़ता था। परमिट के लिये, ठेके के लिये, नौकरी के लिये उनकी चिट्ठी रामवाण का काम करती थी। उनकी चिट्ठी पाने पर सफलता में संदेह रहना ही न था। जब कभी किसी को आवश्यकता होती थी वह महंत जी का 'आशीर्वाद पाने पहुंच जाता था और पूजा होने पर प्रसन्न हो महंत जी आशीर्वाद दे भी देते थे। इन बातों को ले महंत जी पर समाचार पत्रों में आक्षेप आते थे। महंत जी ने एक मोटर की परमिट ली और वह एक राजा को दुगनी कीमत में बेंच दी। उन्होंने इस प्रकार तीन मोटरें बेचीं और उन्हें काफी लाभ हुआ।

पन्द्रह अगस्त के पश्चात् मंत्रि-मंडल के पूर्ण सत्ता प्राप्त करते ही महंत जी का प्रभुत्व और भी बढ़ गया। अब वे खुल कर खेलने लगे। उनके दिन आराम से कट ही रहे थे कि एक बवँडर सा खड़ा हो गया। एक व्यक्ति ने उनके मठ में हरिजन प्रवेश के लिये आमरण अनशन करने का निश्चय किया। उस समय हरिजन प्रवेश बिल स्वीकृत नहीं हुआ था। महंत जी इस विपदा से चिन्ता में पड़ गये। वे सदैव अपना परिचय मठ का स्वामी कह कर दिया करते थे पर अब उनने यह प्रचार आरम्भ कर दिया कि वे मठ के पुजारी ही हैं और उन्हें पूजा करने का ही अधिकार है, मठ की अन्य सारी व्यवस्था मठ के ट्रस्टियों के हाथ में है। महंत जी ने यह वचन दिया कि कानून बनाने पर वे सब से पहले अपना मठ हरिजनों के लिये खोल देंगे पर इससे उस व्यक्ति को संतोष नहीं हुआ और उसने अपना अनशन आरम्भ कर ही डाला। महंत जी कुछ आवश्यक कार्य से उसी दिन

जमींदारी के दौरे पर चले गये।

उस व्यक्ति के सामने ही महंत जी के एक चेले ने भी उपवास किया। इस चेले का उपवास उस व्यक्ति के विरोध में था। चेले का नाम राधेश्याम और उस व्यक्ति का नाम हरदयाल था। राधेश्याम का उपवास हरदयाल को तंग करने के लिये था। यह चेला रोज भाँग और गाँजा पीता था और भगवान के चरणामृत के नाम पर बहुत दूध पी जाता था और प्रसाद का नाम ले मिठाई खा जाता था। वह दिनभर बैठ कर हरदयाल को गालियाँ देते रहता था और जब हरदयाल का सोने का समय होता था तो ढोलक बजाकर अपना गाना शुरू कर देता था। हरदयाल को जान से मार डालने की धमकी दी जाती थी पर वे बहुत धैर्यवान थे। वे अपने निश्चय पर दृढ़ थे। राधेश्याम की सभी चेष्टायें असफल रही तो उसने चिढ़ कर हरदयाल को मठ से निकालने का ही निश्चय कर डाला और उसपर हमला भी किया। हरदयाल को प्राण रक्षा के लिये भागना पड़ा और अनेक लोगों ने उन्हें उपवास तोड़ देने की सलाह दी। प्रांत के मंत्रियों को इसकी सूचना दी गयी। प्रधान मंत्री ने हरदयाल को उत्तर भेजा कि वे उपवास तोड़ दें—हरिजन प्रवेश बिल शीघ्र ही पास हो जायगा। लोगों के बहुत कहने पर हरदयाल ने अपना उपवास तोड़ दिया। महंत जी भी दौरे से लौट आये। उनने आते ही वक्तव्य दिया कि ट्रस्टियों के विरोध के कारण ही मंदिर में हरिजनों का प्रवेश सम्भव नहीं है—वैसे व्यक्तिगत रूप से वे इसके पक्ष में ही हैं। उनकी स्थिति इससे स्पष्ट नहीं हुई और जनता के विरोध के कारण कांग्रेस कमेटी ने उनके विरुद्ध अनुशासन भंग की कार्यवाही करने का निश्चय किया पर उनके सौभाग्य से तभी प्रधान मंत्री

की सालगिरह पड़ी थी और महंत जी ने अपनी चोटी से एड़ी तक पसीना बहाया। इस अवसर पर प्रधान मंत्री को डेढ़ लाख रुपये की थैली भेंट करही दी। यह रुपया बड़े २ सेठ-साहूकार, मालगुजार और जमींदारों से लिया गया था। इस थैली की आड़ से प्रधान मंत्री पर कुछ ऐसा प्रभाव पड़ा कि अनुशासन भंग की कार्यवाही वाली बात दब ही गयी।

एक दिन मैं महंत जी को उनकी कही बातें याद दिलाने गया। उनने मुझे शिक्षकों की उन्नति के लिये प्रयत्न करने का आश्वासन चुनाव के पहले दिया था पर अबतक कुछ भी नहीं किया था। हम लोगों की स्थिति भी दिनों दिन बिगड़ रही थी। मैं तथा मेरे साथ दो और शिक्षक उनसे मिलने गये। उस दिन भी वहां बहुत से लोग जमा दिखे। उनके गाँव में हिन्दू-मुसलमानों का दंगा हो गया था उसकी शिकायत करने आये थे। महंत जी ने उन लोगों को बहुत डाँटा और मिल-जुल कर रहने का उपदेश दिया। उनने साफ २ कह दिया कि वे किसी पर दया न करेंगे। उनके लिये हिन्दू और मुसलमान दोनों ही समान हैं। उनने साम्प्रदायिक एकता पर एक खासी अच्छी स्पीच ही दे डाली। गाँव वालों के लौटने पर हम तीनों उनके सामने हाजिर किये गये। मुंशी जी भी वहीं थे। मैंने अभिवादन करते हुए कहा— "हम लोग आप की सेवा में जिला-शिक्षक संघ की ओर से आये हैं। आपने हमें वचन दिया था कि आप असेम्बली में हम लोगों उन्नति के लिये बिल पास करायेंगे पर अभी तक व्यस्तताओं के कारण सम्भवतः आप भूल गये और इधर हम लोगों की स्थिति दिनों दिन बिगड़ रही हैं। इसी लिये हम लोग आप की सेवा में आये हैं।" महंत जी गम्भीर हो गये। वे कुछ सोचने लगे और

उनकी चेष्टाओं से ऐसा प्रतीत होता था कि मानों वे कुछ याद करने की चेष्टा कर रहे हैं।

कुछ देर बाद उनने कहा—"मास्टर साहेब आपको तो मैं अच्छी तरह पहिचानता हूँ पर शिक्षक संघ का नाम तो पहली ही दफे सुना है। मुझे तो याद नहीं आता कि इस विषय पर कभी और अपनी बातें हुई होंगी।' मैंने उन्हें याद दिलाने की चेष्टा की इस पर उनने मुंशी जी को कहा—"मुंशी जी जरा हमारी डायरी में तो देखिये कि कहीं इसका जिक्र है या नहीं।" मुंशी जी ने बिना अपनी जगह से उठे ही कहा—"महाराज जी मुझे पूरी डायरी याद है। उसमें कहीं इसका जिक्र नहीं है।" मुझे फिर याद दिलाने की चेष्टा करते देख उनने कहा—"खैर शायद हम भूल गये होंगे पर अब आप लोगों के प्रति हमारा जो कर्त्तव्य है उसे हम भी अनुभव करते हैं और आप लोगों की ओर हमारा ध्यान गया भी था। हम आप की उन्नति चाहते हैं पर अभी अनेक बड़ी २ समस्याऐं हम लोगों के सम्मुख हैं और हम उन्हीं में व्यस्त हैं। आप लोग कुछ दिन और धैर्य रखें ऐसी प्रार्थना है।" इस भाँति की निराशाजनक बातें सुन मैंने यह बताने की चेष्टा की कि हम लोगों ने बहुत दिन धैर्य रखा। महंत जी ने दृढ़ता से कहा—"अंग्रेजी राज में आप सब कुछ सहते थे, अब अपना राज हो गया है तो आप कुछ भी सहने तैय्यार नहीं हैं। शासन में धीरे २ ही सुधार होंगे आप को धैर्य रखना चाहिये। हम लोग अपना कर्त्तव्य समझते हैं पर आप को भी हमारी जिम्मेदारियों का ध्यान रखना चाहिये। हम स्वयं चाहते हैं कि आप लोगों की उन्नति हो पर अभी हम लाचार हैं। बड़ी दिक्कतों के बाद मैं हरिजन प्रवेश बिल पास करा सका हूँ।"

हरिजन प्रवेश बिल एक समाजवादी ने पास कराया था पर उसे अपने द्वारा पास कराया कहने में महंत जी को जरा भी हिच-किचाहट नहीं हुई। मैंने महंत जी के प्रधान मंत्री तथा मंत्रिमंडल पर प्रभाव की बातें कह कहा—"आप यदि थोड़ी भी कृपा करें तो हमारा बहुत उपकार हो सकता है।" महंत जी ने झल्लाते हुए कहा—"अब मैं क्या कहूँ। मैं चेष्टा करूँगा पर वचन नहीं दे सकता। मेरे पास न जाने ऐसे कितने ही लोग आते हैं यदि मैं प्रत्येक की सिफारश मंत्रियों से करने लगूँ तो मेरा मान ही क्या रहेगा। स्वराज्य होने से प्रत्येक अपनी ही बात सोचता है यह कोई नहीं सोचता था कि इसे अभी सुराज्य बनाना है।" एक मिल मालिक तभी वहां आ खड़े हुए। उनने महंत जी से एकांत में बातें करने की इच्छा प्रगट की और दोनों भीतर चले गये। थोड़ी देर बाद लौटे तो दोनों के चेहरे खिले थे। मिल मालिक ने कहा—"अच्छा तो महंत जी अब मैं चलूँगा पर मुझे वह जमीन मिलनी ही चाहिये। आप यदि कुछ और चाहें तो मैं खिदमत के लिये तैय्यार हूँ।" महंत जी ने कहा—"अजी जनाब यकीन रखिये कि वह जमीन आप को ही मिलेगी।" उनने अभिवादन कर बिदा ली। हम लोग आशा में बैठे थे। हमारी ओर देख महंत जी ने कहा—"देखिये ये धारीवाल भाटा गाँव में मिल के लिये जगह चाहते हैं। गाँव वाले अपनी जगह देना नहीं चाहते—अब मुझे इसके लिये भी प्रयत्न करना होगा क्यों कि हम लोग भी देशी उद्योग-धन्धों की उन्नति चाहते हैं। मिल खुलने से अनेक लोगों की बेकारी की समस्या हल हो जायेगी। अब आप ही सोचिये कि ऐसी महत्वपूर्ण समस्याओं के रहते आप का प्रश्न मैं कैसे उठा सकता हूँ। खैर मैं चेष्टा करूँगा—अब आज्ञा दीजिये।" हम लोगों को लौटना ही पड़ा।

मैं सोचता था कि शायद कार्य की व्यस्तता के कारण ही महंत जी को हमारी याद न रही होगी। उस दिन दंगे की अपील लेकर आये किसानों से उनकी बातचीत मैंने सुनी थी और मुझे ऐसा लगा कि महंत जी साम्प्रदायिकता से बिलकुल परे हैं—उनके सामने हिन्दू और मुसलमान का कुछ भी भेद नहीं है। उन दिनों जब कि देश में मुसलमानों की हत्या को ही हिन्दुत्व और हिन्दू धर्म के उद्धार का मार्ग समझा जाता था उनके जैसे धार्मिक मनोवृत्ति के व्यक्ति को साम्प्रदायिकता से परे उठा देख मुझे बहुत प्रसन्नता हुई। एक दिन मैं बैठा था तभी हुसैन नामक मेरा एक दोस्त आया। हुसैन एक सिगरेट कम्पनी का एजेन्ट था। उसने आते ही कहा—"यार कहीं से पच्चीस रुपये दिला दो पाकिस्तान का रास्ता पकड़ूं।" मैं उसकी बातें सुन चौंक गया। मेरे पास ही एक शरणार्थी बैठे थे जो यहाँ एक दफ्तर में लग गये थे। मैंने हुसैन से पाकिस्तान जाने का कारण पूछा। उसने बड़े दीन स्वर में कहा—"अब यहाँ क्या करूँ। एक तो यूँ हीं आज-कल लोग मुसलमानों से चिढ़ते हैं फिर महंत जी महाराज की मेहरबानी से मेरी एजेन्सी भी छीन ली गयी। अब फाँकों पर नौबत आयी है। इधर महंत जी के चेले अलग हम लोगों को छेड़ते हैं कि पाकिस्तान चले जाओ। महंत जी के एक चेले ने मेरी बेवा बहिन को छेड़ा पुलिस में रिपोर्ट की पर कुछ भी नतीजा न हुआ।" मैंने दिलासा देते उसे समझाया कि ऐसी स्थिति ज्यादा दिन नहीं ठहरेगी, थोड़े ही दिनों में वातावरण शांत हो जायेगा अतएव उसे पकिस्तान जाने का विचार छोड़ देना चाहिये। हुसैन ने यह भी बताया कि महंत जी के लोग यह प्रचार करते हैं कि हिन्दुओं को मुसलमानों की दूकान से सामान नहीं खरीदना चाहिये और उनके अनेक गुन्डे शहर में खुल्लम खुला मुसलमानों

को छेड़ते हैं। उसने रुँधे स्वर में कहा—"महंत जी लोगों को बदला लेने उसकाते हैं। हम लोगों की कुर्बानी से भी यदि पंजाब या नौआखाली का बदला हो सकता है तो हम मरने को तैय्यार हैं पर महंत जी लोगों को हमारे खिलाफ उसकाते हैं और खुद अपनी नयी २ दूकानें खोल रहे हैं।" जो शरणार्थी बैठे थे उनकी आँखों में एक चमक दिखी और उनने कहा—"आप ठीक कहते हैं। पंजाब या नौआखाली में जो हुआ है—हिन्दू उसका बदला ले नहीं सकते—दे जरूर सकते है। वहाँ जो भी हुआ, इंसानियत से परे था इसलिये उसका बदला हो ही नहीं सकता। उसका बदला इंसान ले ही नहीं सकता। हिन्दू उसका बदला इसी तरह दे सकते हैं कि वहाँ जो कुछ भी हुआ वह यहाँ न होने दें। हमने लाहौर भी देखा, अमृतसर भी देखा और दिल्ली भी देखी। सब तरफ यही हाल है। औरतों की बेइज्जती से कोई यह नहीं समझता कि यह किसी माँ-बहिन की बेइज्जती है लोग उसे हिन्दू या मुसलमान की बेइज्जती ही समझते हैं।" मैंने समर्थन करते हुए कहा—"आप ठीक कह रहे हैं सरदार जी। महंत जी जैसे चोट्टे ही दंगे कराते हैं और अपना उल्लू सीधा करते हैं। ये पूँजी-पति ही दंगे कराते हैं। इन्हें न हिन्दू ही समझना चाहिये न मुसलमान ही। यह देश के दुश्मन हैं।" हुसैन ने कहा—"अजी जनाब इन्हीं महंत जी ने हाजी साहेब को मुसलिम नेशनल गार्ड के हथियार बनाने के लिये काले बाजार से लोहा दिलाया और हाजी साहेब ने हथियार बनवा कर चौगुनी कीमत में बेचे। तलाशी होने पर नेशनल गार्ड वाले तो पकड़ गये पर ये दोनों कमबख्त बच गये।" हम दोनों ने हुसैन को दिलासा दिया। मैंने उसे दस रुपये दे कहीं दूसरी जगह नौकरी खोज देने का वचन दे बिदा किया। उस दिन मैं सोच रहा था कि एक वे

सरदार साहेब हैं जो अपना सब कुछ लुट जाने पर भी मनुष्यत्व पर विश्वास करते हैं और दूसरे यह महंत जी हैं जो अपने स्वार्थ के लिये नीच से नीच कर्म करने में भी नहीं हिचकिचाते। मैं सोच रहा था कि इंसान कितना नीच हो सकता है और तभी यह ख्याल भी आया कि इंसान कितना ऊँचा हो सकता है।

मठ से कुछ ही दूरी पर मुसलमानों की एक बस्ती थी। महंत जी की उस जमीन पर नजर गढ़ गयी। उनने उसे खरीदना चाहा पर वह उन्हें न मिल सकी। वहाँ के लोग जमीन बेचने को तैय्यार नहीं थे। एक दिन महंत जी के कुछ शिष्य वहाँ जा झगड़ पड़े और यह झगड़ा दंगे के रूप में परिवर्तित हो गया। बस्ती में आग लगा दी गयी। शहर का वातावरण अशान्तमय होने के कारण करफ्यू लगा दिया गया। महंत जी पुलिस लारी में बैठकर घूमते थे और लाऊडस्पीकर पर से लोगों से शांत रहने की प्रार्थना करते थे। उनकी अपील जिलाधीश ने छपा कर शहर में बँटवा दी। शहर की 'पीस कमेटी' बनादी गयी और महंत जी को सभापति बनाया गया। उस बस्ती के कई मुसलमान पाकिस्तान चले गये। जो बचे थे उन्हें प्रांतीय सरकार ने दंड स्वरूप वह स्थान छोड़ने लाचार किया। वह जमीन महंत जी को देदी गयी। महंत जी वहाँ एक कारखाना खोलना चाहते थे। उनका कार्य भी शुरू हो गया और कारखाना तैय्यार होने लगा। उन्हें और लोगों की भाँति सामान वगैरह मिलने में अड़चन भी न होती थी। इस बीच महंत जी के आशीर्वाद से धारीवाल को भी भाटा गाँव की जमीन प्राप्त हो गयी थी। महंत जी का कारखाना करीब आधा बन गया था।

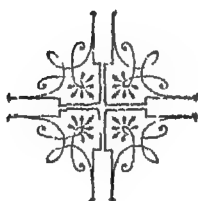
इस प्रकार समय कट रहा था और महंत जी को हम लोगों

का ध्यान आया ही नहीं। जिला शिक्षक-संघ की ओर से दो बार फिर मैं गया। महंत जी ने उसी भाँति की टालमटोल की और तीसरी दफे जाने पर मिलने से ही इनकार कर दिया। हम लोग उनकी ओर से निराश हो गये थे। हमने प्रांतीय सरकार से अपनी तनख्वाह बढ़ाने की विनती की पर हमारी बातें नहीं सुनी गयीं। आखिर हम लोगों ने हड़ताल करने का निश्चय किया। हड़ताल के ठीक एक दिन पहले मैं "पब्लिक सेफ्टी बिल" के अनुसार गिरफ्तार कर लिया गया।

जेल में मुझे काफी तकलीफ दी जाती थी। प्रांत के मंत्रियों ने अपने अपने वक्तव्यों में यह कहा था कि हड़ताल करने वाले देशद्रोही हैं और देश की बुराई चाहते हैं। महंत जी "जेल विजिटर थे"। एकदिन उनने मुझे अपनी गलती मान लिखित माफी माँगने को कहा। मैंने शिक्षकों की न्यायोचित माँगे बतायीं। उनने मुझे काफी भला बुरा कहा। मैंने उनकी बातों का जवाब दिया तो मुझे 'सेल' में रख दिया गया। एक माह बाद समझौता होने पर मुझे छोड़ा गया।

जिस दिन मैं छूटा उसी दिन महंत जी के कारखाने का उद्घाटन होने वाला था। प्रांत के गवर्नर इस कार्य के लिये पधारे थे। कारखाने के पास एक पंडाल बनाया गया था। पंडाल की सजावट गजब की थी। गवर्नर महोदय ने अपने भाषण में महंत जी की बहुत प्रशंसा की और उनके त्याग और उदारता की अनेक बातें बतायीं। महंत जी भी बोलने खड़े हुए। उनका चेहरा चमक रहा था और यह ज्ञात हो जाता था कि उनने क्रीम, पाउडर लगाया है। उनने कहा—"भाइयो, यह कारखाना मैंने अपने स्वार्थ के लिये नहीं खोला है। यह सहकारिता की भावना

पर खोला गया है। आज हमने जिस युग को पार किया है वह एक भयानक युग था। अब हमें नई दुनिया बसानी है। इस नई दुनिया में इंसान होगा और इंसानियत का राज होगा।" मेरा मस्तिष्क विकृत सा हो गया और मैं बाहर निकल पड़ा। मेरे कानों में गूँज रहा था "अब हमें नई दुनिया बसानी है। इस नई दुनिया में इंसान होगा और इंसानियत का राज होगा।" मेरा सिर भन्ना गया और मैं सोचने लगा कि इंसानियत का नारा लगाने वाला स्वयं इंसान है या नहीं ? मैंने सोचा कि उन्हें इंसान नहीं कहा जा सकता और जानवर कहना जानवर का अपमान करना होगा। उन्हें क्या कहा जाय यह मैं न समझ सका। मेरे दिल में प्रश्न उठा था—इंसान या जानवर ?"



अमर देश में

—प्रदीप कुमार, बी० ए०।

शहर में अचानक शाम को सांप्रदायिक दंगा शुरू हो गया। कई दिनों से शहर में भीतर ही भीतर दबी हुई जो चिनगारी सुलग रही थी—फैल रही थी—वह एकाएक जोरों से भड़क उठी; और क्षणभर में ही हिन्दू और मुसलमान धर्मान्ध होकर इन्सान से जैसे भेड़िये बन बैठे—भूखे भेड़िये! देखते ही देखते शहर में, मुहल्ले में, गली-कूचों में खून की नदियाँ पहाड़ी नदी की तरह मचल पड़ी! चारों ओर आग, लूट, मार, काट के भीषण दृश्य; चारों ओर खून—केवल खून!

और चित्रकान्त आहत-सा चारपाई पर बैठा सोच रहा था—'आह! इन्सान आज इन्सान नहीं रहा—वह जानवर भी नहीं रहा; वह जानवर से भी नीच; पिशाचों से भी भयानक है—घृणित है! उफ! कितना विवेकहीन हो गया है वह—कितना कठोर—हृदयहीन—धर्मान्ध! और फिर भी आज का मानव

सभ्यता का दम भरता है—सभ्यता का राग अलापता है—अपनी सभ्यता पर उसे गर्व है—अभिमान है। लेकिन, मानव आज शिक्षित होकर भी—सभ्य होकर भी क्या है? एक भेड़िया—हाँ, एक भूखा भेड़िया ही तो। मासूम बच्चों के खून से होली खेलना, भाई-भाई के प्यार भरे सीने में छुरी भोंकना—निर्दोष अबलाओं की इज्जत का—आबरू का उपहास करना—उनकी अस्मत पर दिन दिहाड़े उनके सगे-संबंधियों के सामने ही डाका डालना ही क्या सभ्यता है—क्या यही मानवता है?' और चित्रकान्त अपने इस जटिल प्रश्न का उत्तर देने में जैसे असमर्थ था—एकदम असमर्थ!

विचारों के प्रवाह में चित्रकान्त तिनके-सा बहा जा रहा था—बहता जा रहा था—आसपास जैसे कोई तट नहीं—किनारा नहीं! और तभी अनायास ही उसे ख्याल आया—वह चौंक-सा पड़ा! 'अरे प्रमोद अभीतक नहीं आया? दस बजने को हैं—लेकिन अभीतक वह गायब क्यों—आया क्यों नहीं? शहर में चारों ओर दंगे की आग फैली हुई है—प्रलय की लपटों की तरह—चारों ओर मार-काट—खून—केवल खून! और प्रमोद अभीतक वापस नहीं आया? वह आया क्यों नहीं? आखिर अबतक कहाँ रुका हुआ है वह? कहीं प्रमोद को कुछ हो गया तो···कुछ हो गया तो···? और इसके विचार-मात्र से ही वह चौंक पड़ा—सिहर-सा उठा। नहीं नहीं उसे ऐसा नहीं सोचना चाहिये—नहीं सोचना चाहिये ईश्वर करे प्रमोद सकुशल घर लौट आये—वह सकुशल लौट आये।

अज्ञात अनिष्ट की आशंकाओं से कान्त का हृदय घिर-घिर-सा जाता! वह बेचैन-सा, परेशान-सा कमरे में टहलने लगा।

चित्रकान्त और प्रमोद एक ही कॉलेज के छात्र थे। दोनों सहपाठी थे। हाई-स्कूल में भी वे दोनों साथ-साथ पढ़े थे—पुराना परिचय था—आपस में अच्छी घनिष्टता थी—और इसी-लिये, होस्टल में जब उन्हें जगह नहीं मिल सकी तो शहर में ही किराये का एक छोटा-सा मकान लेकर वे साथ-साथ रहने लगे।

कान्त और प्रमोद थे तो एक दूसरे के घनिष्ट मित्र, पर दोनों के विचारों में, दृष्टिकोण में, आदर्श में जैसे जमीन-आसमान का अन्तर था! एक उत्तर था तो दूसरा दक्षिण! कान्त का दृष्टिकोण विशाल था—वह था शान्ति-पथ का राही; गाँधी जी के आदर्शों पर; पद-चिन्हों पर चलने वाला उत्साही युवक! देश के लिये, राष्ट्र के लिये उसके हृदय में प्यार था, श्रद्धा थी, उत्साह था, उमंग थी! और इसके विपरीत प्रमोद उच्छृंखल था, गुमराह था, राष्ट्र और राष्ट्रपिता से दूर-कोसों दूर! उसका तो जैसे एक ही ध्येय था—'खाओ, पीओ, मौज करो—' और कदाचित इसीलिये, अपने बाप-दादों की गाढ़ी-कमाई वह जैसे पानी की तरह बहा रहा था।

कान्त और प्रमोद के विचारों में इतना अन्तर होते हुये भी उनमें घनिष्ठता थी, वे दोनों मिलकर साथ-साथ रहते थे, बिल्कुल भाई-भाई की तरह। यह निसन्देह आश्चर्यजनक बात थी। पर बात दरअसल यही थी, यही थी!

विचारों के जाल में उलझता हुआ कान्त सोच रहा था कि कितना अन्तर है प्रमोद और फीरोज़ में! फीरोज़ मुसलमान होकर भी कितना अच्छा है कितना नेक! अपने देश के लिये उसके हृदय में कितना प्रेम है—कितनी श्रद्धा है! उसके सभी

मुसलमान साथी भारत छोड़कर पाकिस्तान चले गये—साथियों ने उसे भी बहकाया, पर उसने हमेशा यही उत्तर दिया 'जिस भारत माता की गोद में खेलकर मैं बड़ा हुआ हूँ, उसी में मौत की मीठी नींद भी सो जाऊँगा !' उसके साथी अवाक्-से उसकी ओर देखते ही रह जाते। कान्त को फीरोज पर गर्व था अभिमान था !

कान्त ने कलाई में बंधी हुई घड़ी की ओर देखा। साढ़े दस बजे थे। तभी किसी ने धीरे से दरवाजा थप-थपाया—'कौन, प्रमोद ? तुम आगये ?' कान्त प्रसन्न होकर बोला।

पर आगन्तुक ने कोई उत्तर नहीं दिया। उसने दरवाजा पुनः थप-थपाया।

कान्त ठिठका—दरवाजे के निकट आकर बोला—'कौन हैं आप ? खोलते क्यों नहीं ?'

'मैं हूँ···मैं···मैं···' काँपती हुई-घबराई-सी एक नारी की आवाज आई—'मुझे बचाइये, गुन्डे मेरा पीछा कर रहे हैं···मुझे बचाइये···मुझे अन्दर कर लीजिये···मेरी लाज बचाइये···मेरी लाज बचाइये···'

युवती की घबराहट ने कान्त को परेशान-सा कर दिया उसने फौरन दरवाजा खोल दिया।

सलवार और दुपट्टे में लिपटी हुई एक युवती कमरे के अन्दर आ गई ! वह घबराई हुई थी—हाँफ रही थी !

कान्त को कमरे में अकेला देखकर 'युवती सहम-सी गई। घबराकर, कातर दृष्टि से उसने कान्त की ओर देखा, जैसे कह

रही हो—'मैं तुम्हारी शरण हूँ, मेरी इज्जत, मेरी अस्मत तुम्हारे हाथों है—तुम्हारे हाथों है !'

युवती के हृदय की बात कान्त ने पढ़ली—बोला 'घबराओ नहीं बहन, तुम अब सुरक्षित हो, खतरे से बाहर हो—।'

युवती आश्चर्य-चकित हो बोली—'ओह ! आपने मुझे बहन कहा ? आपने मुझे बहन कहा ?' उसे जैसे अपनी आँखों पर विश्वास नहीं हो रहा था।

कान्त युवती के भोलेपन पर मुस्करा उठा, बोला—'दूसरों की बहू-बेटियाँ हर भारतीय के लिये बहन ही होती हैं देवी !'

युवती आत्म-निर्भर हो उठी, बोली—'ओह कितने अच्छे, कितने नेक, कितने महान हैं आप !'

'महान नहीं, मैं इन्सान हूँ देवी, एक मामूली इन्सान !' कान्त ने कहा।

'नहीं आप फरिश्ते हैं, फरिश्ते से भी नेक और महान !' युवती बोली।

'खैर, आपकी कृपा है देवी !' कान्त ने कहा—'क्या मैं आप का शुभ नाम पूछ सकता हूँ ?' 'मुझे सलमा कहते हैं !' युवती ने सकुचाते हुये कहा। 'बहुत ठीक !' कान्त ने प्रसन्न हो हँसते हुये कहा—'हमारी सलमा बहन अब सुरक्षित है, कोई खतरा नहीं। मेरे जीते जी तुम्हें कोई हाथ नहीं लगा सकेगा, बहन !'

सलमा ने श्रद्धा पूर्वक कान्त की ओर देखा, जैसे कह रही हो—'सचमुच आप फरिश्ते से भी महान हैं !' फिर बोली—'अपने भैय्या का नाम पूछ सकती हूँ ?'

'क्यों नहीं ?' कान्त ने मुस्कराकर उत्तर दिया—'मुझे चित्र-कान्त कहते हैं—।'

सलमा चौंक-सी गई, फिर कुछ आश्चर्य से बोली—'ओह ! क्या आप ही हैं चित्रकान्त जी–प्रसिद्ध कहानी-लेखक ! प्रमीला ने आपके बारे में बहुत-कुछ बतलाया था।।' सलमा कुछ झेंपती-सी बोली।

'आप कबसे जानती हैं उसे ?' कान्त धीरे से मुस्करा उठा !

'प्रमीला मेरी सहपाठिनी है।' सलमा ने सकुचाकर उत्तर दिया।

कान्त ने चाहा कि इस संबंध में वह सलमा से कुछ और भी पूछे, पर, अवसर उपयुक्त न होने के कारण वह चाहकर भी कुछ न कह सका। बोला—'अच्छा अब तुम आराम करो सलमा बहन। मुझे प्रमोद का इन्जार करना है।'

'प्रमोद कौन, कान्त भैय्या ?' सलमा ने आश्चर्य से पूछा।

'मेरा सहपाठी !' कान्त बोला—'न जाने कहां रुका हुआ है, अभीतक नहीं आया। मेरी तबियत घबरा रही है सलमा !'

'ईश्वर करे वे सही सलामत घर लौट आयें।' सलमा ने कहा।

'खैर, तुम आराम करो बहन--बहुत थकी-सी मालूम होती हो !' कान्त ने सलमा की ओर देखकर कहा।

सलमा ने आँखों में ही हँसकर कहा—'कितने अच्छे, कितने नेक हैं आप !' और चुपचाप वह कमरे के अन्दर चली गई।

लगभग घंटे भर के बाद प्रमोद घबराया हुआ-हाँफता हुआ घर लौटा।

उसकी घबराहट देख कान्त बोला—'अरे इतने घबराये हुये क्यों हो, प्रमोद ?'

'अरे, कुछ न पूछो भाई, कुछ न पूछो !' प्रमोद थका-सा कुर्सीपर बैठते हुये बोला।

'अरे, अबतक तुम रहे कहाँ ? तुम्हें लौटते न देखकर मेरी तबियत घबरा रही थी।' कान्त ने एक दूसरी कुर्सी पर बैठते हुये कहा।

'बड़ी मुश्किल से जान बची है कान्त ! यह कहो, ईश्वर की कृपा से गली-कूचों में लुकता-छिपता किसी तरह जिन्दा लौट आया, वरना टिकिट तो कटा ही चुके थे !'

'हाँ, ईश्वर की कृपा ही थी !' कान्त बोला—'तुम न आते तो न जाने मेरी क्या हालत होती ! खैर, तुम यहीं बैठो—मैं स्टोव जलाकर चाय तैय्यार करलूँ, हम भी पी लेंगे और सलमा भी पी लेगी, वह बेचारी भी बहुत थकी हुई है।

'सलमा ?' प्रमोद चौंका। हड़बड़ा कर बोला—'सलमा कौन ? कहाँ है वह ?'

'अपने शयन-कक्ष में !' कान्त बोला—'गुन्डे बेचारी का पीछा कर रहे थे—वह घबराई हुई आई, मैंने उसे छुपा लिया। खैर, चाय बन जाने दो, उसे उठाकर तुमसे परिचय भी करा दूँगा।'

सलमा को देखने के लिये प्रमोद अधीर-सा हो उठा, पर

मनोभाव को दबाकर बोला—'तुम कितने निडर हो कान्त! मुहल्ले के हिन्दू सलमा को अगर घर में घुसते हुये देख लेते तो?'

'तो क्या?' कान्त ने दृढ़ता पूर्वक कहा—'मेरे जीते जी सलमा को कोई आँख उठाकर भी नही देख सकता था।'

'तब तो तुम्हें निश्चय ही अपनी जिन्दगी से हाथ धोना पड़ता।' प्रमोद ने व्यंग भरी मुस्कान के साथ कहा!

'तो मैं उसके लिये भी तैय्यार था!' कान्त ने कुछ उत्तेजित होकर कहा—'शरणार्थिनी को बचाने के लिये मैं अपने प्राणों से भी खेल सकता था—और इसके लिये मैं अभी भी तैय्यार हूँ!'

प्रमोद ने देखा कान्त उत्तेजित हो रहा है—बहस करने से बात बढ़ जायगी, अतः क्रम बदल कर बोला—'अरे यार छोड़ो भी इन बातों को। चाय की बात भूल गये क्या?।

और वे दोनों चाय की तैय्यारी करने लगे।

चाय पीते समय कान्त ने सलमा और प्रमोद का आपस में परिचय कराया—। सलमा ने अपनी गोरी-गोरी कलाइयाँ जोड़कर सकुचाती हुई कहा—'नमस्ते!' और प्रमोद ठगा-सा लुटा सा देखता ही रह गया—सलमा के गुलाब की तरह खिले हुये चेहरे की ओर!

प्रमोद की आँखों में वासना की स्पष्ट पुकार देखकर सलमा सहम-सी गई। कान्त ने इसे स्पष्ट देखा!

कान्त को टोंकना ही पड़ा—'प्रमोद, चाय ठंडी हो रही है।'

प्रमोद जैसे होश में आया वह चौंक-सा पड़ा !

प्रमोद को चारपाई पर सुलाकर कान्त वहीं पास ही एक दरी बिछाकर सो गया।

रात बढ़ती जा रही थी—और इसके साथ ही प्रमोद के हृदय में दबी हुई काम-वासना भी उमड़ती जारही थी ! वह बेचैन-सा करवटें बदल रहा था।

उसने कलाई में बँधी हुई घड़ी की ओर देखा—बारह बजने वाले थे। फिर ध्यान पूर्वक उसने कान्त की ओर देखा—वह नींद में था ! प्रमोद फिर धीरे से चारपाई से उतर कर कान्त के निकट आया। कान्त सो रहा था—प्रमोद ने अपनी शंका मिटाने के लिये धीरे से उसके सीने पर हाथ रख दिया ! कान्त नींद में बेखबर था, प्रमोद की आँखों में खुशी नाच उठी !

वह धीरे से संभलकर उठा—फिर दबे पैर सतर्क होकर बिजली की स्विच के निकट आया ! एक बार पुनः उसने कान्त की ओर देखा—और धीरे से बटन दबाकर कमरे की रोशनी बुझादी। वह काँपते हुये पैरों और धड़कते हुये हृदय से सलमा के कमरे की ओर बढ़ गया।

और कान्त सोया नहीं था ! चाय पीते समय प्रमोद की आँखों में वासना की पुकार देखकर ही वह सतर्क हो गया था। उसने इसीलिये, सोने का अभिनय किया था—वह प्रमोद की हरकतों को दबी हुई दृष्टि से देख रहा था ! वह प्रमोद का आशय समझ गया ! उसका हृदय क्रोध और घृणा से भर उठा !

प्रमोद सलमा के कमरे के सामने पहुँचा ही था कि कान्त ने उसके चेहरे पर टार्च की रोशनी फेंक कर कहा—'प्रमोद !'

और प्रमोद जैसे आसमान से फिसल पड़ा ! वह काँप उठा —वह निरुत्तर हो गया !

फौरन उठकर कान्त ने बिजली का बटन दबाकर कमरे में रोशनी की और प्रमोद के निकट आकर कहा—'कमरे की रोशनी बुझाकर इतनी रात को चोरों की तरह तुम सलमा के कमरे के सामने ? क्यों, किसलिये ?'

अभी क्षणभर पहले प्रमोद के हृदय में जो कंपन-सी छा गई थी—वह कान्त के प्रश्न के साथ ही मिट गई। कान्त के प्रश्न के लिये प्रमोद जैसे पहले से ही तैय्यार था—निडर हो बोला—'तुम निरे बच्चे नहीं हो कान्त ! फिर जान बूझकर क्यों बच्चों की तरह प्रश्न करते हो ?'

'होश में तो हो प्रमोद !' कान्त ने आश्चर्य में डूबकर कहा—'पागल तो नहीं हो गये हो ?'

'पागल तुम !' प्रमोद ने व्यंग के साथ कहा—'हाथ आई हुई चिड़िया को छोड़ देना पागलपन नहीं तो क्या है ? मैं तुम्हारे जैसा सन्यासी नहीं—मैं सलमा के यौवन से अपने हृदय की प्यास बुझाऊँगा !'

'प्रमोद !' कान्त क्रोध में काँप उठा।

'हाँ, आज तो मैं इस छोकरी के यौवन से अपने हृदय की प्यास बुझाकर ही रहूँगा। मुसलमानों ने हिन्दू लड़कियों के साथ,

युवतियों के साथ जो अत्याचार किये हैं—जुल्म किये हैं—मैं आज उसका बदला लूँगा—अपने दिल की आग बुझाऊँगा! कान्त, तुम मेरे मामले में दखल न दो—मेरे रास्ते से हट जाओ—।'

'प्रमोद, मैं कहता हूँ, होश में आओ···होश में आओ—' कान्त ने अधिकार भरे स्वर में उसे सचेत करना चाहा।

'मैं होश में हूँ कान्त!' प्रमोद ने दृढ़ता के साथ कहा—'बंगाल और पंजाब में हिन्दू लड़कियों के साथ, अबलाओं के साथ जो अमानुषिक अत्याचार हुये हैं—जुल्म हुये हैं—उसका बदला मैं इस हसीन सलमा से लेकर अपने हृदय की ज्वाला शान्त करूँगा!'

'लेकिन मेरे जीते जी सलमा को तुम छू भी नहीं सकोगे—वह शरणार्थिनी है—वह हमारी बहन है!'

'बहन?' प्रमोद घृणा से हँसा—'तुम उसे बहन ही समझो! मैं तो उसे एक हसीन—जवान छोकरी ही समझूँगा!'

लेकिन, मेरे जीते जी तुम उसके कमरे में क़दम भी नहीं रख सकोगे—यह भी स्मरण रक्खो! 'कान्त ने अपना फैसला सुना दिया।

'और मैंने भी फैसला करलिया है! मेरा निश्चय चट्टान सा अटल है!' प्रमोद बोला—'कान्त मैं कहता हूँ—तुम मेरे रास्ते से हट जाओ, वरना ठीक नहीं होगा—ठीक नहीं होगा!'

'तुम्हारी धमकियों से मैं डरने का नहीं। मैं फिर भी कहता हूँ—तुम होश में आओ—' कान्त ने जैसे अन्तिम चेतावनी दी।

'खैर, मैं भी देखता हूँ—आज कौन आता है मेरे सामने ?' कहकर प्रमोद सलमा के कमरे की ओर बढ़ा।

कान्त ने उसे झटके से खींचकर कहा—चीखते हुये—'नीच ! कुत्ते !!'

क्रोध में आकर प्रमोद ने एक तमाचा जड़ दिया।

बदले में कान्त ने थप्पड़ रसीद की—प्रमोद लड़खड़ा गया—वह सामने दीवार से टकरा गया—उसके सिर में चोट आई। पर, संभलकर कुरते की जेब से फौरन उसने पिस्तौल निकाली—कान्त के सीने की ओर तानकर कहा—'तो तुम मेरे रास्ते से नहीं हटोगे ?'

'नहीं—जीते जी नहीं—कभी नहीं !' कान्त ने अपना निश्चय सुना दिया।

'तो फिर तैय्यार हो जाओ मरने के लिये !' प्रमोद ने पिस्तौल कान्त के सीने के और भी निकट लाकर कहा।

कान्त एक क़दम पीछे हटा ! 'और तुम भी—' कहकर कान्त ने भी फौरन अपने कुरते की जेब से पिस्तौल निकाल ली !

पिस्तौल को देखकर प्रमोद चौंक पड़ा। वह घबरा कर दो क़दम पीछे हट गया।

'पागलपन छोड़दो प्रमोद !' कान्त ने जरा आगे बढ़कर कहा !

उत्तर में प्रमोद ने गोली चलादी।

पहली गोली लगते ही कान्त ने भी गोलियाँ चलादीं।

दोनों उसी क्षण धराशायी हो गये !

गोली की आवाज़ सुनकर सलमा कांप उठी ! हड़बड़ाकर घबराई-सी वह कमरे में आई—। कमरे का दृश्य देखकर वह थर-थर काँप उठी ! उसे लगा कि वह कोई बुरा सपना देख रही है। अपनी आँखों पर उसे विश्वास नहीं हो सका। पर, कठोर सत्य सामने अट्टहास कर रहा था ! कान्त और प्रमोद के कपड़े खून से तर हो उठे थे—लाल हो उठे थे—वे दोनों औंधे मुँह निश्चल पड़े हुये थे। सलमा ने हड़बड़ाकर कान्त को सीधा किया। लेकिन आह ! कान्त शीतल हो चुका था—। सलमा एक हलकी चीख के साथ मूर्छित हो गई।

सलमा को जब होश आया—तो उसने सुना बाहर, टूटती हुई —लड़खड़ाती हुई आवाज़ में कोई कह रहा था—'···कान्त··· दरवाजा खोलो कान्त···दरवाजा खोल दो कान्त···' कौन आया है इतनी रात को कान्त के पास ? आगन्तुक की आवाज़ इतनी क्षीण क्यों; काँपती हुई क्यों ? क्या कोई घायल है—क्या गुन्डे उसका पीछा कर रहे हैं ? एक साथ ही कई प्रश्न सलमा के हृदय में गूंज उठे ! सहमी सी वह दरवाजे के निकट आई। आगन्तुक कह रहा था—'दरवाजा जल्दी खोलो कान्त'

'कौन हैं आप ?' सलमा ने धीरे से पूछा।

चेतना शिथिल-सी हो रही थी—आगन्तुक सलमा की आवाज न पहचान सका—बोला—'अरे मैं हूँ भाई—मुझे पहचाना नहीं—? लो संभालो कान्त, जल्दी संभालो अपनी प्रमीला को !'

'प्रमीला को ? सलमा चौंक पड़ी ! पर उसी क्षण हड़बड़ाकर उसने धीरे से दरवाजा खोल दिया !

सलमा को देखते ही आगन्तुक चौंक पड़ा ! आश्चर्य में डूबता हुआ—घबराकर बोला—'सलमा तुम ? यहाँ इतनी रात को ?'

आगन्तुक के खून से तर लाल कपड़ों को देखकर सलमा एकाएक चौंक पड़ी ! घबराकर, हड़बड़ाकर बोली—'फीरोज तुम ? तुम्हारी यह हालत ?' और अधीर-सी—विचलित-सी होकर उसने सहमी हुई प्रमीला की ओर देखा—जैसे पूछ रही हो—'इनकी यह हालत कैसे हुई बहन !'

इसके पहले कि फीरोज कुछ कहे—प्रमीला काँपती-सी बोली—'मुझे बचाने में ही इनकी यह हालत हुई है सलमा !'

सलमा फीरोज़ के खून भरे कपड़ों को देखकर सिहर उठी; काँप उठी !

कान्त को सामने न देखकर फीरोज़ ने परेशान-सा, कहा—'कान्त नहीं दिख रहा है सलमा—वह सो तो नहीं गया है ?'

'कान्त ?···सो तो नहीं गया है···?' सलमा जैसे खाई में फिसल पड़ी—वह सिहर उठी—काँप उठी ! हाय ! वह कैसे कहे कि कान्त सचमुच सो गया है—ऐसी मीठी नींद में कि वह कभी नहीं उठेगा—कभी नहीं ! उसके होंठ हिले—और काँप कर रह गये ! कातर दृष्टि से, डबडबाई आँखों से उसने फीरोज़ की ओर देखा—जैसे कह रही हो—'यह मुझसे न पूछो फीरोज़···न पूछो—' दो बूँद आँसू ढुलककर उसके गालोंपर आ गये !

सलमा की आँखों में आँसू देखकर फीरोज़ अनिष्ट की आशंका से सिहर उठा! घबराकर बोला—'तुम्हारी आँखों में आँसू क्यों—? क्यों, क्या बात है—तुम चुप क्यों हो—बोलती क्यों नहीं, सलमा—? बोलती क्यों नहीं—'

प्रमीला सुनने के लिये अधीर हो उठी—उसने सलमा की ओर खूनी आँखों से देखा!

और सलमा—'आह! यह न पूछो फीरोज़—यह न पूछो··· न पूछो!' कहकर सिसक पड़ी—वह लड़खड़ाती हुई कान्त के कमरे की ओर बढ़गई।

प्रमीला और फीरोज़ भी घबराकर धड़कते हुये हृदय से फौरन कान्त के कमरे में आ गये। कमरे का दृश्य देखकर उन्हें जैसे काठ मार गया! वे चौंक पड़े—काँप उठे!

हड़बड़ाकर फीरोज ने कान्त का शरीर हिलाया। आह! कान्त निर्जीव हो चुका था—शीतल हो चुका था! फीरोज का अंग-अंग काँप उठा—रोकर बोला—'आह! कान्त! हमसे क्यों रूठकर चलदिये···क्यों चलदिये कान्त!' और उसने कान्त के शीतल वक्षः में अपना सिर छुपा लिया।

और तभी—प्रमीला—'आह! कान्त! मेरे देवता!' कहती हुई लड़खड़ाकर एक हल्की चीख के साथ निष्प्राण-सी कान्त के निर्जीव शरीर पर ढुलक पड़ी!

फीरोज़ चौंका। उसकी चेतना जैसे वापस आई। पर उसे लगा कि उसका हृदय फटा जा रहा है—लौटा जा रहा है—

उसकी चेतना शिथिल हो रही है ! कराहते हुये कठिनाई से बोला—'···यह···सब···क्या है···सलमा···?'

सलमा सिसकी हुई बोली—'मेरी अस्मत की लाज रखने के लिये ही इन्होंने अपने प्राण दे डाले फीरोज !'

सुनकर फीरोज का रोम-रोम काँप उठा ! तभी उसे लगा कि वह शीतल हुआ जा रहा है···वह जैसे कहीं दूर उड़ा जा रहा है—काँपते हुये बोला—'आह ! कान्त !' फिर एक बार अधमुँची आँखों से उसने सलमा की ओर देखा और उसी क्षण उसके हृदय की धड़कन बन्द हो गई ! वह कान्त के पास ही ढुलक पड़ा !

'फीरोज !' कहकर, हड़बड़ाकर सलमा ने फीरोज को हिलाया—उसकी आँखें बन्द थीं—हृदय स्पंदन हीन था ! 'आह ! फीरोज !' की एक चीख के साथ मूर्छित होकर वह फीरोज के निर्जीव शरीर पर ढुलक पड़ी !

और प्रमीला और सलमा को जब होश आया तो वे एक दूसरे से लिपट गयीं । वे रो पड़ीं !

आँसुओं का वेग कम हो जाने पर प्रमीला और सलमा ने शून्य दृष्टि से पागल-सी देखा कान्त और फीरोज के निष्प्राण शरीर की ओर !

कान्त और फीरोज निश्चल पड़े हुये थे—जैसे गहरी नींद में डूबे हों !

बंधन-मुक्त होकर, एक होकर उनकी आत्मा उस अगम देश

में पहुँच चुकी थी—जहाँ न कोई जाति है न धर्म, जहाँ इन्सान इन्सान के खून का प्यासा नहीं; जहाँ आपस में कोई भेद नहीं—भाव नहीं—कलह नहीं—ईर्ष्या नहीं ! वे दोनों उस देश में—उस अमर देश में पहुँच चुके थे जहाँ चारों ओर स्नेह और प्रेम के झरने हैं; जहाँ सुख है—शान्ति है !

प्रमीला ने सिसकते हुये कहा—'फीरोज़ कितना अच्छा था—सलमा; कितना महान !'

सलमा रोती हुई बोली—'और कान्त फरिश्ता था बहन—फरिश्ते से भी नेक—महान !'

और उसी क्षण अपने उमड़ते हुये आँसुओं को पलकों में ही पीकर, कान्त और फीरोज़ के शीतल चरणों पर उन्होंने श्रद्धा और प्रेम से अपना सिर झुका दिया !



दानवता का अन्त।



—"अशान्त" त्रिपाठी बी०ए०.



मध्यान्ह का समय था। धूप की प्रखर ज्वाला अपनी प्रचण्ड आतप से अवनि को धधका रही थी। मानव मानव से तंग आचुका था और दानवता तो मानव का गला घोंट कर उसको रसातल को पहुँचाने के लिये पूरा प्रयत्न कर रही थी। हा हा कार! घोर हा हा कार चारों ओर क्रन्दन ही क्रन्दन—चीत्कार—पुकार—और फिर मानव अपनी मानवता का दम भरे। यह कैसा संसार है? मानवता के आवरण में श्वेत चादर ओढ़े मानव सभ्यता की स्वांसें ले—यह कैसा अनर्थ है? यही है वह रहस्य जो मानव को मानवता से परे रखता है। यही है वह संघर्ष जो मानव को बूढ़े इन्सान की तरह बुरी तरह रोंद डालता है।

चारों ओर क्रन्दन होरहा था। रवि की रश्मियों ने भी अपना क्रम बदला और शीतलता में परिवर्त्तित होगई। आसमान लाल हो उठा, ध्वनित हो उठा, गूँज उठा उन बेगुनाहों की पुकार से जो कि रजतमयी चाँदनी में महलों के रक्त से सिंचित

अट्टहास का उपहास कर रही थीं। ऐसे ही वातावरण से योगेश तंग आगया था। लाहौर से आये हुये अभी उसे सिकन्दराबाद में कुछ ही महीना हुआ था लेकिन वह कभी २ कल्पनाविहीन हो जाता, सोचने लगता—क्या यही मानवता है,—क्या लाहौर और सिकन्दराबाद में एक से ही इन्सान बसते हैं ?

इसी कल्पना में लीन था कि किरण उसके कमरे में आई और बोली—

"क्या सारा दिन इसी प्रकार बितादोगे। आखिर खाना भी तो खाना है। हम लोगों ,को इतने दिन आये हुये हो गये हैं, कुछ उद्योग धंधा भी करना है, कबतक गाँठ से खायेंगे'।

"खाना, कैसा खाना, जब इन्सान का जीवन ही खतरे में है, जब मानव मानव ही न रहा—तब कैसा खाना ! इस तरह से तो जीवन की अन्त ही अच्छा है।"

किरण—ठीक कहते हैं आप पर इस दुनिया में परिस्थितियोंको भी मानव वशमें कर सकता है, यदि इन्सान इन्सानियत को छोड़ सकता है यदि मानवता का दानवी स्वरूप हो सकता है तो इन्सान इन्सान भी बन सकता है—हमारे इतिहास इस बात के साक्षी हैं।"

इस प्रकार वार्तालाप करते २ रजनी आई। वे दोनों अपने शयन कक्ष में गये पर योगेश को शान्ति न मिली। उसे रजनी काली नागिन की तरह प्रतीत होने लगी। एक समय था कि वह लाहौर के प्रमुख रईसों में था, महल में अठखेलियाँ किया करता था पर आज उसकी झोंपड़ी की दीवारें उसे पुनः अपनी पिछली परिस्थितियों की स्मृतियाँ दिलाकर भावी संकट का सामना करने को चुनौती दे रही थी। योगेश सारी रात्रि न

सो सका पर वेदना ने उसका साथ दिया। क्रन्दन हुआ। पुकार आई और योगेश तुरन्त ही अपने मकान से कूचे की ओर दौड़ा। पर देखते ही रुक गया। उसकी धोंकनी एक तपेदिक के मरीज की तरह चलने लगीं। साहस ने विजय पाई, आगे बढ़ा, दृश्य देखकर हक्का बक्का सा रह गया।

पुनः आगे बढ़ा तो देखता है मानव का खून—खून से लथपथ लाश—योगेश से न रहागया। अपने पूर्वजों तथा भाइयों के बदले लेने की भावना ने उसे जागृत करदिया, उन्मत्त बना दिया।

उन्मत्त उनमना सा वह बेचैन! उसके शरीर के रग २ में खून उमड़ रहा था। सड़क पर खड़ा लाश के पास वह मानवता को धिक्कार रहा था, देख रहा था वह मानवता का स्वरूप और मानव के कृत्यों का फल। बेगुनाह अबला का खून केवल चन्द चाँदी के टुकड़े के लिये—केवल उसके उमड़ते यौवन की मादक हाला से अपनी प्यास बुझाने के लिये—खून किया था उस मानव ने जिसे मानव नहीं कहा जा सकता जोकि अपनी स्वार्थमयी भावनाओं पर पर्दा डालने के लिये धर्म की आड़ में युग को बदलना चाहता था, समाज को अपने इशारों पर नचाना चाहता था।

वह था रज़ाकार जिसके भविष्य पर काले बादल मँडराये रहते थे जिसके जीवन की चाह कमल के पानी की तरह अस्थिर थी—वह था रज़ाकार जो चट्टानों से भी टक्कर लेने वाले खतरे से नहीं डरता—

भीड़ सहसा आई और लाठियाँ पर लाठियाँ चलने लगीं, भाले, छुरी, तलवार तथा बन्दूक की बौछारों की आवाज़ हुई।

चारों ओर आतंक ही आतंक—चारों ओर भगदड़—बीहड़ वन की तरह नगर सुन्सान सा ऊजड़-सा प्रतीत होने लगा पर योगेश तनिक भी न भयभीत हुआ और उस लाश को अपने बाहों पर रखकर चलपड़ा।

चोटें आईं—तन से रक्त की धारा प्रवाहित होने लगी—पीठ पर घाव हो गये। रज़ाकार द्वारा लाठियों के प्रहार घाव पर नमक छिड़कने का कार्य करने लगे।

पर योगेश लुड़कता हुआ, डोलता हुआ एक सुन्सान स्थान पर आया। ज्यों २ समय बीतता जाता था उसके चेहरे की आकृति भी भयंकर होती जाती थी। लाश अवनी पर रक्खी ही थी कि योगेश ने देखा कि अवनी तो पहिले ही अपनी झोली फैलाई हुई लाश का आह्वान कर रही थी।

योगेश घर आया। खून से लथपथ था। द्वार खटखटाया पर उत्तर न पाकर वह कुछ हतोत्साह सा हुआ। "किरण" "किरण" उसने कईबार पुकारा पर पत्नी की आवाज़ न पाकर उसे आने-वाली विपत्ति पर भ्रम हुआ।

रज़ाकार का जुल्म सारे रियासत में फैल गया। निज़ाम की निज़ामशाही एक और नाटक खेलना चाहती थी, और उसके पात्र रज़ाकार थे। वे इधर आसफजाही हुकूमत का स्वप्न देख रहे थे, बिजली की तरह उनके अरमानों की चमक दिखाई दे रही थी और उनकी इच्छायें तो वायुयान की तरह आकाश में तीव्र गति से बढ़ी जा रही थीं।

कुछ ही दिन में पांसा पलट गया था। भारत के विभाजन से पाकिस्तान का निर्माण हुआ था। रियासतें हिन्द यूनियन में आगई थीं पर हैदराबाद इतनी सहज में अपने अधिकारों को नहीं बेचना चाहती थी। रज़ाकार उठे। कासिक रिज़वी की धुँधली आकृति दिखाई दी—धर्म और मानवता की सुरक्षा की आड़ में जुल्म होने लगे। जुल्म का सहचर खून बना और उसने मानव का चोला बदल दिया।

मानव बदल गया। युग बदल गया। मानवता सिहर उठी, प्रकम्पित हो उठी। लूट का व्यापार—चारों ओर आतंकवाद का बोलबाला और मानव की भावनाओं का नर्त्तन—ये सब अपना स्वरूप दिखलाने लगे।

मानवता रो उठी—मज़दूर सिहर उठा—किसान भयभीत हो उठे। उनके आदर्शों का खून—यह कब वे देख सकते थे पर क्या करें वे—निहत्थे, बेगुनाहों पर फिर चोट पड़ी—गाँव के गाँव जला दिये—खेत जल रहे थे, इन्सान जल रहा था और उसके जानवर भी—

कैसा समागम था—ज्वाला विचित्र थी—दृश्य भयानक था—चिनगारियाँ उठ रहीं थीं। आवाज चिनगारियों से सुनाई दे रही थी "ओ मानवता के प्रतीक, इस जुल्म का भी अन्त होगा, ओ अशान्ति के उत्पादक, इन काली करतूतों में स्वयं मानव का पतन होगा और मानवता अपने बनाये हुये शय्या पर सदा के लिये भस्म हो जायगी"—

किरण अपने शहर में लकड़ी तथा गेहूँ मांगने गई थी। जब से उसके पति इस शहर में आये थे तब से ही विपत्तियाँ—बाधायें मार्ग में आकर उसके संघर्ष को अधिक बढ़ा रही थीं

इधर इतने दिन पास का रुपया पैसा सारा खर्च हो गया उधर योगेश ममता की सेवा में लग गया था। अब खाने को कहाँ से आये ?

यही प्रश्न था उसके सामने। पर बेचारी क्या करती। चली जारही थी अपने एक मित्र के यहाँ—मार्ग में भीषण दृश्य उसे आतंकित कर रहे थे। उन दिनों अकेली नारी का निकलना ठीक नहीं था—मार्ग में ही शशधर मिला।

"बहन, इस भयंकर वातावरण में तुम यहाँ।"

"भैय्या, तुम कहाँ, मैं तो तुम्हारे यहाँ ही जा रही थी, कई दिन हुये भाभी की खबर न मिली थी।"

"पर ऐसे जाना खतरे से खाली नहीं, रोजाना घटनायें हो रही हैं।"

इतना कहना ही था कि गोली कीआवाज़ आई। क्रन्दन हुआ —शशधर ने किरण को अपने समीप करलिया और रिवाल्वर लिये हुये अपने घर को भागा। रास्ते में खेत जल रहे थे—चिनगारियाँ सुलगरहीं थीं। घर पहुँचा, किरण को अन्दर किया।

शशधर, कुछ पैसे वाला है—पर किरण कैसे कहे कि वह इस परिस्थिति में है।

किरण को रूपा के पास छोड़कर शशधर कुछ कार्यवश बाहर चलागया। आवभगत के पश्चात रूपा और किरण दोनों बैठक में बैठी हुई वार्तालाप कर रहीं थीं। इतने में रज़ाकार गुन्डों का एक झुंड रूपा के घर के अन्दर प्रविष्ट होने लगा। उनके आँखों में मादकता थी और आकृतियाँ शेर के समान भयंकर थीं।

दोनों भयभीत हुईं—चीख उठीं—भारतीय नारी आदर्शवाद में पली हुई अब भी वीरता का दम भरती थीं। रज़ाकारों का झुंड बढ़ता चला आरहा था,—नारे लगाये जा रहे थे और इधर। ये नारे इन नारियों के हृदय में काँटों की तरह छिद रहे थे।

शशधर की पत्नी पर हमला हुआ और उसकी लाश सड़क पर फेंक दी गई। शशधर घर आया—किरण का हाल भी बहुत बुरा था। उसने अपनी भावी के सतीत्व की रक्षा की थी पर क्या करे नारी तो नारी ही है यह सैकड़ों मानव के झुंड के सामने किस तरह मुकाबिला करती ? उसका भी तन रक्त से उमड़ रहा था पर उसका सतीत्व जीवित था—

"बहन यह क्या हाल किया तूने अपना, तेरी भावी कहाँ है।"

"भैय्या, भावी तो दानवता की ज्वाला का होम बनकर ऐसे स्थान पर पहुँच गई है जहाँ मानव मिट्टी का पुतला है, जहाँ मानव के वास्तविक स्वरूप का पता पड़ता है। मैं भी वहीं जा रही हूँ पर इतना कहे देती हूँ कि सत्यता का महत्व जीवन में होता है। दानवता का पतन तो अन्त में होगा ही पर यदि हम अपने आदर्शों पर सर्वदा चलते रहे तो देश की अटूट शक्तियाँ सर्वदा विजयी रहेंगी।"

'दानवता' का अन्त होगा' यह शब्द शशधर के कानों को ध्वनित कर रहे थे—वह किरण को लिये हुये अपने कल्पना और वेदना का शिकारी बन मरघट की ओर बढ़रहा था पर वह कहाँ जायें जहां देखो वहाँ मरघट ही का दृश्य दिखाई देता था।

उधर योगेश भी एक युवती की लाश अपने करों में लपेटा

हुआ चला आरहा था—कल्पना में लीन बिखरे बाल और फक्कड़-सा योगेश को आता हुआ देखकर शशधर चौंका—आज वह क्या उत्तर देगा—नयनों में आँसू ने उसी क्षण अधिकार जमाया। वह लाश की ओर देखता रहगया।

योगेश वेग-सा बढ़ता हुआ उसी स्थान पर आगया—लाश अवनी पर रक्खी गई—योगेश शशधर को देखकर चौंका—

"शशधर; तुम।"

"हाँ, भाई योगेश, किस्मत का चक्कर ही ऐसा है।"

और उसके नयनों में नीर आया, मोतियों की तरह अवनि पर ढुलकने लगा। नयनों के समक्ष अन्धकार सा प्रतीत होने लगा। मन में अनेकों प्रकार की भावनायें उठने लगीं। पर वह उत्तर क्या दे। किस प्रकार अपना मुँह दिखाये।

"शशधर, मौन क्यों हो—आखिर क्या बात है।"

"बहन···किरण···इस संसार·········"

शशधर का कण्ठ भर आया और इतना कहते हुये जमीन पर धड़ाम से गिर पड़ा।

अजीब उलझन और विकट संघर्ष में पड़ा हुआ था योगेश और अब किरण का गम तो उसे रसातल की ओर लेजा रहा था। इतनी यातना कैसे सहे वह। पागल-सा हो गया—उसका रूप विकराल हो गया—

चिल्ला रहा था वह—"किरण, जीवन संगिनी, तुम भी रूठकर चली गईं—वाह री मानवता—तेरा यह भी स्वरूप हो सकता है"—

उसका क्रन्दन—उसकी आवाज मरघट को और भी भयानक बना रही थी—पर उसकी आवाज़ कौन सुनता। शशधर को होश आया, उठा और योगेश से लिपट गया।

शशधर ने जब योगेश की लाई हुई लाश को देखा, चौंक गया—बोल पड़ा—"भैय्या—यह तो रूपा है।"

"ऐं—ऐं" योगेश से न रहा गया। वह रो पड़ा अब उसको जीवन का रहस्य समझ में आया। वह कल्पना में बढ़ने लगा "मोह मानव की दुर्बलता है। दूसरों की सेवा में जीवन का बलिदान महत्व की वस्तु है"

इधर शशधर और योगेश घर आये, उधर मरघट पर पड़ी हुई दो भारतीय नारियों की लाशें मुस्करा रहीं थीं। दोनों का मिलन हुआ। अधिकार—कर्त्तव्य, मौत—जिन्दगी का मिलन था—दोनों की लाशें जल रही थीं, दानवता को चुनौती दे रही थीं, "किसी वस्तु का अन्त करने को बलिदान आवश्यक है पर दानवता कभी भी अधिक काल के लिये नहीं टिकेगी।"

कई दिन व्यतीत हो गये। इस तरह से जनता पर निज़ाम के गुण्डे रज़ाकार के भेष में ज़ुल्म करने लगे। अत्याचार की भी सीमा अब बहुत आगे बढ़ चुकी थी। इन्सान का जीवन अब ख़तरे से खाली न था। शान्ति भंग हो चुकी थी और यह थी निज़ाम के शासन की परिभाषा—

आज योगेश बहुत उदास था। नगर की अवस्था दिन पर

दिन गिरती जा रही थी। उसका दिमाग़ दानवता को समूल नष्ट करने के विचार में लगा हुआ था पर अभी तक युक्ति समझ में न आई थी।

इधर मानव के अस्थिपिंजर के दृश्य—जिन्दा इन्सान के अग्नि में जलने के दृश्य—मज़दूरों की आहें—अबलाओं के सतीत्व पर दिनदहाड़े आघात—बलात्कार—उसके मन की कल्पना को इतनी द्रुतगति से अनन्त की ओर ले जारहे थे जिस प्रकार रेलगाड़ी तेज़रफ्तार में मानव को अमुक स्थान पर ले जाती है।

अब योगेश शशधर के यहाँ ही रहने लगा। एक से दो हुये और दोनों मानवता का अस्तित्व सुरक्षित रखने का प्रयास करने लगे। दिनभर योगेश छिपे रूप में जनता की सेवा किया करता था। उसका न कोई धर्म है और न जाति। वह तो इन्सान है।

प्रातःकाल से ही कुछ अटपटे समाचार प्राप्त हुये और योगेश शशधर को अकेला छोड़कर चला गया। चलते समय उसने शशधर को गले लगालिया और कहने लगा—

"साथी, यदि जीवित रहा, तो मिलूँगा अन्यथा अबतो मजार पर ही मिलन होगा।"

योगेश के जीवन की सहचरी अब किरण नहीं थी पर उसके जीवन की झलकती ज्वाला ही अब उसे प्रेरणा प्रदान करती थी।

उसके पास केवल एक पिस्तौल रह गई थी। योगेश को अब पिस्तौल का सहारा लेना ही पड़ा—

औरंगाबाद जाते २ रास्ते के कुछ गाँव योगेश को दिखाई दिये। वह रुका, तुरन्त ही रज़ाकार और जनता की भीड़ में

घुस पड़ा और तीर की तरह उसने भीड़ का तितर बितर किया। गुण्डों ने उस वीर को देखा—पर उन्हें क्या वे तो वीरता को अपने बाबा आदिम के जमाने का ठेका समझते थे। उस गाँव के घरों में मारकाट हो रही थी। खून बरस रहा था। रक्त की नदियाँ बहरही थीं। एक रजाकार एक गृहस्थ नारी का वस्त्र खींच रहा था क्यों कि परिवार में अब केवल वही जीवित थी—

"दानवता और अत्याचार अपना अधिकार जमाये हुये थे। —अभीतक योगेश शान्ति धारण किये हुये था पर अब न रहागया। बढ़गया आगे यह युवक। एक साथ उसने सात फायर चलाये। तमाम रजाकार गुण्डे मारे गये और भयभीत होकर भाग गये।"

उसने एक नारी की लाज बचाई थी पर इस प्रकार वह कितनी नारियों की लाज बचा सकता था। वह इसी विचारधारा में डूब रहा था। उसने दानवता की काली करतूतें समाचार पत्रों तथा हिन्द के रक्षकों के पास भेजदीं—

मानवता को अभीतक सुरक्षित करनेवाला अब अधिक आगे बढ़चुका था। उसकी इस वीरता को देखकर उस गाँव के किसान मजदूर सभी प्रेम करने लगे।

सहसा फिर बारूद के साथ गुण्डों की भीड़ आई।

गाँव पर आतंक छा गया। जनता के पास कोई अस्त्रशस्त्र न थे।

योगेश तो चाहता था कि खूनखराबी न हो। उसने गाँव वालों से,कहा कि हम तो शान्ति के उत्पादक हैं।

नन्हें आगे बढ़ा और कहने लगा—"योगेश बाबू आप क्या

कहते हैं ? हम भी इस गाँव के मुसलमानों को नष्ट करदेंगे।"—

योगेश—"न दादा, ऐसा कभी न सोचना। यह लड़ाई धर्म की लड़ाई नहीं है। हिन्दू और मुसलमान की लड़ाई नहीं है। यह तो इन्सानियत और हैवानियत की लड़ाई है।"

"हमारी सरकार ने भी कुछ नहीं किया है।"

"कर रही है हमारी सरकार, शोलापुर से फौजें इसीलिये तो रवाना हुई हैं।"

"पर क्या यह गुण्डाशाही खत्म हो जायेगी ?"

"हाँ दादा, आप तो पढ़े लिखे हैं। आप तो स्वयं जानते हैं। दानवता का अन्त होगा—अवश्य होगा। मानवता बिजयी होगी।"

इतने में शशधर भी आगया। ढूँढ़ता २ किसी किनारे उसकी नाव आगई।

कार्य करते २ योगेश का स्वास्थ्य बिगड़ चुका था। शशधर ने उससे घर चलने के लिये कहा—

योगेश—"अब तो यहीं घर बनेगा—"

इतने में भीड़ ने योगेश को घेर लिया—

शशधर ने यह सब देखलिया। तुरन्त दौड़ा। गाँव वाले दौड़े—पर योगेश घायल होगया—शरीर की ज्योति सदा के लिये बुझगई।

गाँव वाले सिसकियाँ भरने लगे पर उसकी लाश मुस्करा रही थी। मुस्कराकर कहने लगी। "दानवता का अन्त एक दिन निश्चित रूप से होगा पर हमें संघर्ष करना पड़ेगा"।

इधर लाश का स्वरूप विकृत हो चुका और उधर शासन की बागडोर सँभालनेवाले अपना निश्चित फैसला दे चुके थे।

हिन्द फौजें आगे बढ़ चुकी थी और रज़ाकार गुण्डे विद्रोह की भयंकर ज्वाला में भस्म हो रहे थे।

मरघट पर योगेश की लाश पड़ी हुई थी। थोड़ा सा जीवन ही शेष था सो वह दानवता का भस्मसात स्वरूप देखने को तड़प रहा था।

शशधर का साथी सदा के लिये छीन लिया गया। दारुण दुख:, घोर वेदना. उसके शरीर में काँटों की तरह व्यथा पहुँचा रहे थे।

"नन्हें दादा, मानवता को सुरक्षित रखने के लिये बलिदान देना पड़ता है।"—शशधर कहने लगा।

"हाँ बाबू, हमारे तो प्राण छीन लिये किसी ने।"

और इतना कहकर वह लाश से लिपट गया। नयनों से अश्रु निकलकर लाश पर गिरने लगे। सैकड़ों नर नारी उसकी लाश के पास खड़े हुये उसके प्रति अपने आँसू बहा रहे थे।

दृश्य करुणात्मक था। मानवता का दीवाना आज दानवता की फैलाई हुई माया में जकड़ा हुआ था पर वह स्वतन्त्र था।

लाश से ध्वनि जाग्रत हुई। नर नारी हक्के बक्के से हो गये —टकटकी लगाये हुये योगेश के मुख की तरफ देखने लगे। उसका मुख चमक रहा था। ध्वनि गूँज रही थी "देखो उस तरफ देखो, वे फौजें आरहीं हैं जोकि मानवता की चिर अनन्त-काल की सभ्यता को स्थापित किये हुये हैं। उस तरफ देखो— दानवता अपनी ही बनाई हुई शैय्या में भस्म हो रही है। रजाकार गुण्डे अब प्रज्वलित चिनगारियों में भस्म हो रहे हैं—मैंने पहिले ही कहा था कि दानवता का अन्त होगा।"

वास्तव में दानवता दफनाई जारही थी। सहस्त्रों नर नारियाँ अचम्भे में पड़गईं। इतना शीघ्र परिवर्त्तन होगा ऐसा उन्हें विश्वास नहीं था।

जिधर भी दृष्टि जाती थी उधर ही ज्वालाओं में गुन्डों के काले कारनामे जलते हुये दिखाई दे रहे थे।

अब शशधर को जानपड़ा कि साधना और त्याग भी जीवन में अपना महत्व रखते हैं।

आज तो वह दीवाना-सा फिर रहा था। उसे तो बार २ वे ही पुराने दृश्य दिखलाई दे रहे थे।

"बलिदान—बलिदान, आह कैसा बलिदान—क्या योगेश के ही बलिदान से दानवता का अन्त होना था" यह कल्पना करता हुआ फिर उसी स्थान पर पहुँचा जहाँ उसका साथी मरघट की गोद में खेलरहा था।

श्रद्धांजलि अर्पित करने के बाद ही उसने मानवता के अधिकार हो जाने का संदेश सुनलिया। स्मृतियों की तरंगों में वह

अपने घर जा रहा था । आज उसे अनुभव हुआ था "सचमुच में योगेश एक महान आत्मा है, मरकर भी आज उसकी आत्मा बोलती है, सभ्यता—आदर्श—साधना—सत्यता तथा मानवता का आभास आज भी उसकी स्मृति में झलकता है" ।

श्रद्धा और भावुकता से उसका हृदय भरगया और फिर उसने एक बार अपने साथी योगेश की लाश की ओर देखा। आँसू आये और अब राम सदा के लिये कर्त्तव्य में परिवर्त्तित हुआ ।

शीघ्र ही प्रकाशित होरही हैं।



१. बापू का बलिदान (काव्य)—

ले० श्री अशान्त त्रिपाठी, बी० ए०

मूल्य २)

२. उद्‌गारों की तड़पन (उपन्यास)—

ले० श्री अशान्त त्रिपाठी, बी० ए०

मूल्य १॥)

प्राप्ति स्थान—

कमल साहित्य मंदिर,

झाँसी।